काव्य - संकलन

काव्य-संकलन

उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं के लिए

प्रधान संपादक

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी

संपादक

डा० विजयेन्द्र स्नातक

डा० उमाकांत गोयल

राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान

(राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्)

नई दिल्ली

६०-सी-१०

हिन्दी पाठ्यपुस्तक समिति के सदस्य

डा० नगेन्द्र (अध्यक्ष), पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी, डा० विनयमोहन शर्मा, डा० हरवंशलाल शर्मा, डा० कन्हैयालाल सहल, प्रो० देवेन्द्रनाथ शर्मा

●

विशेष आमंत्रित

प्रो० रघुनाथ सफाया, श्री कृष्ण गोपाल रस्तोगी

●

सचिव

श्री अनिल विद्यालंकार

●

संपादन-सलाहकार

प्रो० ब्रजभूषण शर्मा, श्री महेश्वरदयालु शर्मा, श्री निरंजनकुमार सिंह

●

चित्रकार

प्रभात घोष, मंदाकिनी, नाना वाग, महेशचन्द्र, केशव

वितरक
प्रकाशन विभाग
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
११४, सुंदर नगर, नई

●

प्रथम संस्करण : २५००० प्रतियाँ–१५ अगस्त १९६४

●

मूल्य : १ रु. ८५

●

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स,
१० दरियागंज, दिल्ली–६

प्राक्कथन

उपयुक्त पाठ्यक्रम का निर्धारण तथा उसके अनुरूप पाठ्यग्रंथों की रचना राष्ट्रीय महत्त्व का कार्य है। कुछ वर्षों से केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ है और वह इस दिशा में आवश्यक अनुसंधान तथा निर्माण की योजनाएँ बना रहा है। इनमें से ही एक योजना के अंतर्गत उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं के लिए उपयुक्त पाठ्यपुस्तकों के निर्माण की व्यवस्था की जा रही है। योजना का लक्ष्य तो आदर्श पाठ्यपुस्तकें तैयार करना है, परंतु आदर्श प्रायः असाध्य ही होता है। फिर भी हमारा प्रयास यह अवश्य रहा है कि सामान्य त्रुटियों का यथासंभव निराकरण हो सके और विविध दृष्टियों से उपादेय सामग्री का स्तर के अनुरूप विधिवत् संचयन किया जा सके। इसी लक्ष्य को सामने रखकर अनुभवी शिक्षाविदों की एक समिति का संगठन किया गया है जिसके तत्त्वावधान में इस ग्रंथमाला का संपादन तथा प्रकाशन हो रहा है। इस समिति में अनुभवी शिक्षक, हिन्दी भाषा एवं साहित्य के विद्वान तथा प्रशिक्षण-विशेषज्ञ सम्मिलित हैं।

इन पुस्तकों की कतिपय विशेषताएँ इस प्रकार हैं :

(क) पुस्तकों के संपादन में यह ध्यान रखा गया है कि उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं के विद्यार्थियों को हिन्दी साहित्य के सभी प्रमुख रूपों की जानकारी मिल सके। इसी दृष्टि से प्राचीन और अर्वाचीन कवियों तथा लेखकों की उत्कृष्ट रचनाएँ संगृहीत की गई हैं।

(ख) विद्यार्थियों के सांस्कृतिक स्तर को ऊँचा उठानेवाली रचनाओं को विशेष स्थान दिया गया है। निराशावादी एवं भाग्यवादी रचनाएँ यथासंभव सम्मिलित नहीं की गई हैं। इस बात का भी ध्यान रखा गया है कि भारतीय संस्कृति के प्रति आस्थावान् बनने के साथ-साथ विद्यार्थी विश्वजनीन दृष्टिकोण भी अपना सकें।

(ग) साहित्यिक दृष्टि से समृद्ध ऐसी रचनाओं को प्राथमिकता दी गई है जिनसे भारत की राष्ट्रीय तथा भावनात्मक एकता को बल मिले। हिन्दीतर भाषाओं से अनूदित कुछ रचनाओं के संकलन का यही प्रयोजन है।

(घ) रचनाओं को छात्रों के बौद्धिक स्तर के अनुरूप बनाने के लिए कहीं-कहीं उनका आवश्यक संपादन भी किया गया है, पर ऐसा करते समय दृष्टि यही रही है कि रचना के साहित्यिक सौष्ठव को कोई क्षति न पहुँचे।

(ङ) रचनाओं के संकलन में इस बात का ध्यान रखा गया है कि विद्यार्थियों को रोचक ढंग से एक ओर ज्ञान-विज्ञान के विविध विषयों और दूसरी ओर साहित्य की विविध शैलियों का बोध हो सके।

(च) अध्ययन-अध्यापन की सुविधा की दृष्टि से गद्य तथा काव्य की पुस्तकों को दो भागों में विभक्त कर दिया गया है। इनमें से पहला भाग नवीं कक्षा के लिए है और दूसरा भाग दसवीं तथा ग्यारहवीं कक्षाओं के लिए। नवीं कक्षा के भाग में अपेक्षाकृत सरल रचनाएँ ही संकलित की गई हैं क्योंकि इस कक्षा में छात्र साहित्य में प्रवेश करते हैं।

(छ) पुस्तकों के प्रथम भाग की भूमिका में साहित्य-शिक्षा के उद्देश्यों का संक्षिप्त उल्लेख है। द्वितीय भाग की भूमिका में हिन्दी गद्य तथा कविता के विकास का संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत किया गया है। पाठों के अंत में विषय से संबद्ध प्रश्न और अभ्यास तथा पुस्तक के अंत में गूढ़ार्थ-व्यंजक टिप्पणियाँ हैं। इनसे अध्ययन-अध्यापन में सुविधा होगी।

कृती लेखकों तथा उनके प्रकाशकों ने उदारतापूर्वक अपनी-अपनी रचनाएँ संकलन में सम्मिलित करने की स्वीकृति प्रदान कर हमें उपकृत किया है—हम उन्हें हृदय से धन्यवाद देते हैं। हिन्दी पाठ्यपुस्तक समिति के विद्वान सदस्यों, संपादन-सलाहकारों तथा अन्य विशेषज्ञों के प्रति, जिन्होंने इन पुस्तकों के संपादन में सहायता दी है, हम आभार प्रकट करते हैं। शिक्षा के सिद्धांत और व्यवहार में निपुण इस विद्वन्मंडल के अथक सहयोग के बिना यह कार्य पूरा नहीं हो सकता था।

काव्य-संकलन

प्रथम भाग

(नवीं कक्षा के लिए)

काव्य-संकलन

(प्रथम भाग)

काव्य-संकलन का यह भाग उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों की नवीं कक्षा के छात्रों के लिए तैयार किया गया है। अपने आप में संपूर्ण, स्वतंत्र कविता-संग्रह पढ़ने का उनके लिए यह पहला अवसर होगा, इसलिए प्रयत्न किया गया है कि संगृहीत रचनाएँ उनकी बुद्धि और वय के अनुरूप ही यथासंभव सुबोध, प्रवाहपूर्ण एवं प्रेरणा-प्रद हों। भाषा की दुरूहता के कारण आदिकालीन कवियों की रचनाओं को इस संकलन में स्थान नहीं दिया गया। प्राचीन कवियों में कबीर, तुलसी, रहीम, रसखान और नरोत्तमदास की सरल एवं सरस रचनाएँ ही संकलित की गई हैं। तुलसी और नरोत्तमदास के काव्यों से उद्धृत अंश वर्णनप्रधान हैं। आधुनिक कवियों में सर्वश्री मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, सोहनलाल द्विवेदी, सुभद्राकुमारी चौहान और दिनकर की कविताओं का ही संग्रह किया गया है। स्वच्छ और प्रांजल शैली में लिखित ये सभी कविताएँ राष्ट्रप्रेम, बलिदान, कर्तव्य-पालन तथा मानव-कल्याण की भावनाओं से ओतप्रोत हैं।

कविताओं के अंत में कुछ प्रश्न और अभ्यास दिए गए हैं जिनका उद्देश्य अधीत कविता के रसास्वादन में योगदान करना है। इन प्रश्नों की रचना बाल-मनोविज्ञान को ध्यान में रखकर की गई है। प्रश्नों के माध्यम से छात्रों का ध्यान कविता के भाव तथा शैली के सौन्दर्य की ओर आकृष्ट होगा और उनमें समीक्षक-दृष्टि अंकुरित हो सकेगी।

विषय-सूची

भूमिका

काव्य-संकलन का यह भाग नवीं कक्षा के उन विद्यार्थियों के लिए तैयार किया गया है जिनकी मातृभाषा हिन्दी है। उच्चतर माध्यमिक स्तर की तीनों कक्षाओं को एक इकाई मानकर अध्ययन-अध्यापन की सुविधा की दृष्टि से नवीं कक्षा के लिए हमने उन्हीं रचनाओं को इस संकलन में चुना है जो अपेक्षाकृत सरल और सुबोध हैं।

गद्य-पाठों का उद्देश्य जहाँ भाषा सीखना होता है वहाँ कविता का मुख्य ध्येय सौन्दर्य की अनुभूति द्वारा आनंद की प्राप्ति है। आनुषंगिक रूप से भाषा सीखने तथा ज्ञानार्जन करने में भी कविता सहायक होती है, किन्तु मूलतः वह आनंद का साधन है। कविता प्रायः छंदोबद्ध होती है; लय, स्वर, यति, गति से युक्त होती है। कवि तर्क, युक्ति एवं प्रमाण का आश्रय न लेकर रसानुभूति का समवेत प्रभाव उत्पन्न करता है। कविता बुद्धि का विषय न होकर हृदय का विषय है। इसलिए सामान्य रूप से जो बातें प्रायः सत्य नहीं होतीं अथवा सत्य नहीं समझी जातीं, कविता में उनका वर्णन कल्पनाश्रित होने से निर्दोष ही नहीं, सौन्दर्यविधायक माना जाता है; जैसे—कलियों का अँगड़ाई लेना या पलकें खोलना, फूलों का मुसकाना, पताकाओं का सूर्य के घोड़ों के पैरों में उलझना, पारावार का पारे की तरह डगमग करना, घोड़ों की टापों से पृथ्वी का धसकना आदि कविता में अलंकार माने जाते हैं।

श्रेष्ठ कविता की शब्द-योजना भी ऐसी होती है कि स्वल्प शब्द-प्रयोग से गूढ़ार्थ की व्यंजना के साथ पाठक का मन चमत्कृत हो उठता है। कविता में केवल शब्दार्थबोध से तात्पर्य-बोध नहीं होता। काव्य-सौन्दर्य का समग्र रूप से बोध करने के लिए शब्दार्थ, भावार्थ, अप्रस्तुत योजना, ध्वन्यर्थ, संदर्भ आदि का ज्ञान अनिवार्य है। बिहारी के छोटे-से दोहों में जो व्यापक-विशद अर्थ निहित रहता है, वह कवि की शब्द-योजना पर ही निर्भर है। लक्षणा, व्यंजना और ध्वनि के माध्यम से अर्थ का उद्‌घाटन करने पर ही दोहे का गूढ़ार्थ स्पष्ट होता है। रहीम ने दोहा छंद की शब्द-योजना और गूढ़ार्थ की बड़ी सुंदर परिभाषा की है :

दीरघ दोहा अरथ के आखर थोरे आंहि।
ज्यों रहीम नट कुंडली सिमिटि कूदि कढ़ि जांहि॥

कविता में शब्दों के अर्थ जान लेने के बाद भी रसास्वादन के स्तर तक पहुँचने के लिए बहुत कुछ शेष रह जाता है। इसीलिए काव्य-समीक्षकों के मत में कविता का यथार्थ सौन्दर्य वही है जो बार-बार सामने आने पर भी प्रत्येक बार

नवीन दिखाई दे। यही कारण है कि कविता अनेक बार पढ़ी और सुनी जाती है फिर भी उसका आनंद न्यून नहीं होता।

कविता में सामान्य शब्दों के माध्यम से पूरा चित्र प्रस्तुत किया जाता है; मानसिक भावों और विचारों को शब्दों से साकार रूप में अंकित किया जाता है; सूक्ष्म ध्वनियों, आकृतियों और रंगों को मूर्तिमंत किया जाता है। अतः कविता गद्य की अपेक्षा अधिक गूढ़-गहन होने के साथ रसास्वाद कराने में भी अधिक समर्थ होती है। शब्दों के द्वारा व्यक्त एक प्राकृतिक दृश्य का वर्णन निम्नलिखित एक पंक्ति में देखा जा सकता है :

' चारु चंद्र की चंचल किरणें खेल रही हैं जल-थल में '

यहाँ 'किरणें जल में खेल रही हैं' का तात्पर्य यह है कि जल की हिलती हुई लहरों में किरणें इधर-उधर दौड़ती हुई प्रतीत होती हैं। कवि ने खेलना क्रिया द्वारा किरणों में चेतना का आरोप बड़ी सुंदरता के साथ किया है। किरणों के प्रतिबिम्बित होने से शुक्लपक्ष के शुभ्र आकाश का तथा पवन-प्रवाहित वातावरण का भी सहज ही में बोध होता है। 'थल में खेल रही हैं' से अनुमान होता है कि पेड़ों की पत्तियों से चाँदनी छनकर स्थल पर आ रही है और हवा में पत्तियों के हिलने से किरणें दौड़ती हुई-सी दिखाई देती हैं। जल-थल दोनों का साथ-साथ वर्णन होने से विदित होता है कि कवि ऐसे स्थान का वर्णन कर रहा है जहाँ जल-थल दोनों निकट हैं और किनारे पर वृक्ष हैं। संभवतः यह प्रदेश नदी-तट का है।

कविता के सौन्दर्य की अनुभूति उसके समग्र रूप में ही होती है। कविता के उपकरणों—भाव, विभाव, अलंकार, ध्वनि, नाद, शब्द आदि—की पृथक्-पृथक् प्रतीति होने पर भी सौन्दर्यानुभूति के समय ये समस्त उपकरण खंडित रूप में पाठक के सामने नहीं आते। जैसे सुस्वादु भोजन के विधायक भोज्य रसों के स्वाद पृथक्-पृथक् होने पर भी रसास्वादन के क्षण में उनका समवेत रूप से ही प्रभाव होता है, पृथक् नहीं; वही स्थिति काव्य-रसानुभूति की भी समझनी चाहिए। कविता के तत्त्वों का अध्ययन करने के लिए उन्हें निम्नलिखित रूप में विभाजित किया जाता है :

१. भाव-सौन्दर्य

भाव-सौन्दर्य को ही काव्य-समीक्षकों ने रस कहा है और अधिकांश विद्वानों ने रस को ही काव्य की आत्मा माना है। शृंगार, वीर, करुण, शांत, रौद्र, भयानक, अद्भुत, हास्य तथा बीभत्स रस कविता में माने जाते हैं। इनके अतिरिक्त भक्ति और वात्सल्य को भी कुछ आचार्य रस स्वीकार करते हैं। सूरदास के बाल-वर्णन में, गोपियों के विरह में, तथा सुदामा की दीनता में भाव-सौन्दर्य का ही आनंद है। जिसके कारण मन में कोई भाव पैदा होता है उसे 'आलंबन विभाव' कहते हैं।

जिन परिस्थितियों से भाव उद्दीप्त होता है, उन्हें 'उद्दीपन विभाव' कहते हैं। भावावेश के समय जो शारीरिक विकार होते हैं, वे 'अनुभाव' कहलाते हैं। अस्थिर मनोविकारों को 'संचारी भाव' कहते हैं। विभावों और अनुभावों के वर्णन द्वारा ही कवि पाठक को रस की अनुभूति कराता है।

२. अप्रस्तुत-योजना

वर्ण्य विषय के अतिरिक्त, कवि अन्यान्य दृश्यों, रूपों और तथ्यों को भी हमारे सामने लाता है, जिनका उद्देश्य मुख्यतः कविता के भावात्मक प्रभाव की अभिवृद्धि करना होता है। ये बाहरी चित्र अप्रस्तुत कहलाते हैं। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टांत, संदेह, भ्रम आदि अलंकारों में किसी-न-किसी प्रकार कोई अप्रस्तुत ही सामने लाया जाता है। प्रस्तुत और अप्रस्तुत के मूल में रूप की समता, धर्म की समता अथवा प्रभाव की समता रहती है। केवल रूप-साम्य होना कविता की दृष्टि से श्रेष्ठ नहीं माना जाता; कभी-कभी सदोष भी हो सकता है, जैसे—किसी की अच्छी आँख को कौड़ी नहीं कहा जा सकता। मुख कमल और चंद्रमा के समान बताया जाता है। आकृति भिन्न होने पर भी उज्ज्वलता, स्निग्धता एवं शीतलता के गुणों की समानता के कारण यह उपमा दी जाती है। यही गुण-साम्य धर्म-साम्य कहा जाता है। प्रभाव-साम्य वाले अप्रस्तुत सबसे अच्छे माने जाते हैं। इनकी योजना प्रस्तुत और अप्रस्तुत के प्रभाव की समानता को ध्यान में रखकर की जाती है, जैसे :

जी रही है देवराज्ञी, कैसे मरे अमरी,
मँडरा रही है शून्य वृंत पर भ्रमरी।

अनाथ देवराज्ञी (इंद्राणी) के लिए नीरस जीवन भार हो गया है। वह उसी प्रकार उल्लासरहित है जिस प्रकार पुष्पहीना लता पर मँडराती हुई कोई भ्रमरी। यहाँ रूप-साम्य अथवा धर्म-साम्य नहीं है, किन्तु अनाथ शची एवं शून्य वृंत पर मँडराती हुई भ्रमरी दोनों का अंतिम प्रभाव मन पर एक ही पड़ता है। यही इन दोनों का साम्य है। देवराज्ञी की विषम स्थिति को स्पष्ट करने के लिए इससे अधिक उपयुक्त अप्रस्तुत कदाचित् और नहीं हो सकता।

३. नाद-सौन्दर्य तथा संगीत-तत्त्व

कविता छंदोबद्ध होती है। छंद की यति-गति भी कविता के सौन्दर्य को बढ़ाने वाली होती है। इसके अतिरिक्त शब्दों के चयन, लघु-गुरु-क्रम—जो वर्ण-वृत्तों में और भी स्पष्ट होता है, वर्णों की आवृत्ति (अनुप्रास अलंकार), विभिन्न अर्थों में एक ही शब्द के बार-बार आने (यमक) आदि में कविता का नाद-सौन्दर्य

निहित होता है। तुकांत शब्दों का छंद के बीच में आना हिन्दी-रचनाओं में विशेष रूप से मिलता है। यथा :

नंद के किसोर चितचोर मोरपंखवारे,
बंसीवारे साँवरे पियारे इत आउ रे।

प्राचीन रचनाओं में इस प्रकार के मध्यतुकांत प्रयोग बहुत पाए जाते हैं, और वे कविता के संगीत-तत्त्व में पर्याप्त योग देते हैं।

कभी-कभी कवि ध्वनियों को इस प्रकार समायोजित करता है कि पढ़ते समय वर्णित कार्य के होने की ध्वनि आने लगती है। जैसे, **'घन घमंड नभ गरजत घोरा'** में बादलों के गरजने की ध्वनि है; और

रनित भृंग-घंटावली, झरित दान मधु-नीरु।
मंद मंद आवतु चल्यौ, कुंजरु कुंज-समीरु ॥—

में हाथी के चलते समय घंटा बजने की ध्वनि है।

४. शब्द-सौन्दर्य तथा चित्रात्मकता

शब्दों के चयन और क्रम का इतना महत्त्वपूर्ण स्थान है कि कुछ विद्वान उपयुक्त शब्दों के उपयुक्त क्रम में रखे जाने को ही कविता मानते हैं। श्लेष और यमक का सौन्दर्य इसी प्रकार का है। निम्नलिखित पंक्तियों में रेखांकित शब्द विशेष अभिप्राय से रखे गए हैं :

(१) **देहु उतर अरु कहहु कि नाहीं,**
सत्यसंध तुम्ह रघुकुल माहीं।

(२) **मृतकप्राय हुई तृण-राजि भी,**
सलिल से फिर जीवित हो गई।
फिर सुजीवन जीवन को मिला,
बुध न जीवन 'क्यों उसको कहें' ?

कभी-कभी कवि शब्दों द्वारा बड़े मनोरम चित्र उपस्थित करते हैं। एक उदाहरण लीजिए :

सैकत-शय्या पर दुग्ध-धवल,
तन्वंगी गंगा, ग्रीष्म-विरल,
लेटी है श्रांत, क्लांत, निश्चल।

इन पंक्तियों में ग्रीष्मकालीन पतली धारा वाली गंगा का बड़ा मनोहारी चित्र कवि ने प्रस्तुत किया है। गंगा के लेटने का वर्णन मानो किसी कृशांगी नारी के लेटने का ही वर्णन है।

५. विचार-सौन्दर्य

विषय की उच्चता से काव्य में गरिमा आती है। सामान्य विषयों को कविता द्वारा उदात्त बनाने के लिए पर्याप्त कवि-कौशल की आवश्यकता है। परंतु ऊँचे विषय कविता को स्वयं ऊँचा उठा देने में सहायता देते हैं। संसार में स्थायी काव्य प्रायः वे ही हैं जिनका विषय महान है। बहुत-सी ऐसी रचनाएँ हैं जिनमें कवित्व नहीं के बराबर है किन्तु वे विचारों के कारण ही लोकप्रिय और स्थायी हो गई हैं। रहीम और वृंद के दोहे तथा गिरधर की कुंडलियाँ जिनमें नीति की बातें बड़ी सरल वाणी में कही गई हैं, अपने विषय के कारण ही इतनी प्रसिद्ध हैं।

अनुभव से यह देखा गया है कि नीति की रचनाएँ किशोरों को सर्वाधिक प्रिय होती हैं और वे ऐसी रचनाओं को अनायास ही कंठाग्र कर लेते हैं।

६. आस्वादन की अभिव्यक्ति

कविता के सौन्दर्य की अनुभूति तब तक पूर्ण नहीं समझी जा सकती जब तक कि उसकी अभिव्यक्ति न की जा सके। व्याख्या लिखना, समालोचना करना, तुलना करना अथवा अन्य विचार प्रकट करना इसी अनुभूति की अभिव्यक्ति से संबंधित कार्य हैं। धीरे-धीरे इस कार्य को कर सकने की योग्यता प्राप्त करनी चाहिए। निम्नलिखित संकेत इस योग्यता को प्राप्त करने में सहायक होंगे :

(१) कविता के मूल भाव को अपने शब्दों में प्रकट करना।

(२) विषय-सूत्र के सहारे संपूर्ण भाव व्यक्त करना।

(३) छंद, अलंकार, रस एवं शब्द-सौन्दर्य के स्थलों की ओर संकेत करना तथा यह बताना कि संपूर्ण कविता के सौन्दर्य में उसका क्या योग है ?

(४) कुछ अच्छी व्याख्याओं और समीक्षाओं को हृदयंगम कर लेना चाहिए जो नमूने का काम दे सकें और उनसे आस्वाद को प्रकट करने की शब्दावली समृद्ध हो सके।

७. कविता का सस्वर पाठ

कविता का सस्वर पाठ भी एक प्रकार से कविता के रसास्वादन की अभिव्यक्ति है। कविता का सुपाठ ऐसा होना चाहिए जिससे भावों की अभिव्यक्ति हो सके। वास्तव में कविता सस्वर पढ़ने की ही वस्तु है। उसका सौन्दर्य वाणी और अर्थ दोनों में ही निहित है जबकि संगीत का केवल नाद में। इसलिए कविता इस प्रकार पढ़नी चाहिए कि अर्थ की भी अभिव्यक्ति हो और संगीत उसमें किसी प्रकार बाधक न हो। वास्तव में जितना संगीत कविता के लिए अपेक्षित है वह उसके छंद में, गति-यति में, शब्द-चयन आदि में आ जाता है। अतः कविता-पाठ

में छंद की रक्षा होनी चाहिए और उच्चारण स्पष्ट एवं शुद्ध होना चाहिए। ब्रज और अवधी की कविताओं में तदनुरूप उच्चारण करना चाहिए। मात्राओं का भी पूर्ण उच्चारण होना चाहिए। मात्राओं को कम करके कविता पढ़ने की प्रथा दूषित है। कहीं-कहीं कविताओं में अर्थ-विराम तथा छंद-विराम अलग-अलग जगह पड़ते हैं। ऐसे अवसरों पर छंद की यथासंभव रक्षा करते हुए और अर्थ व्यक्त करते हुए पढ़ना चाहिए। कविताएँ कंठस्थ करना और उनका सुपाठ करना रसानुभूति और उसकी अभिव्यक्ति में सहायक होता है।

कविता के पठन-पाठन के संबंध में हमने संक्षेप में कुछ निर्देश दिए हैं। हमें आशा है कि नवीं कक्षा के विद्यार्थी इस कविता-संकलन को पढ़ते समय इनसे लाभ उठाने का प्रयत्न करेंगे। प्रस्तुत संकलन विशद-अध्ययन के लिए तैयार किया गया है, अतः शब्दार्थ, भावार्थ, व्याख्या तथा संक्षिप्त समीक्षा की दृष्टि से इसे पढ़ना चाहिए।

शिक्षण की दृष्टि से प्रस्तावित क्रम

काव्य-संकलन के इस भाग में कवियों के कालक्रम से कविताएँ संकलित की गई हैं, किन्तु अध्यापन के लिए इस क्रम को ज्यों-का-त्यों ग्रहण करना आवश्यक नहीं है। नवीं कक्षा के विद्यार्थियों के भाषा-ज्ञान, विषय-बोध और मानसिक विकास को ध्यान में रखते हुए सरलता की दृष्टि से निम्नलिखित कवि-क्रम प्रस्तावित किया जा रहा है। यह प्रस्तावित क्रम भी सभी प्रदेशों के विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य नहीं है। अध्यापक अपने प्रदेश के विद्यार्थियों के भाषा-ज्ञान और मानसिक विकास के आधार पर इसमें आवश्यक परिवर्तन कर सकते हैं। प्रस्तावित कविक्रम इस प्रकार है :

१. सुभद्राकुमारी चौहान
२. सोहनलाल द्विवेदी
३. रामनरेश त्रिपाठी
४. मैथिलीशरण गुप्त
५. रामधारीसिंह दिनकर
६. रहीम
७. नरोत्तमदास
८. रसखान
९. तुलसीदास
१०. कबीरदास

कबीरदास

कबीर अपने समय के उत्कृष्ट संत एवं उच्च कोटि के विचारक थे। इनका जन्म सन् १३९९ ई० के लगभग वाराणसी (उत्तरप्रदेश) में हुआ था। जुलाहा जाति के नीमा और नीरू दंपति ने इनका लालन-पालन किया। बड़े होने पर कबीर ने भी जुलाहे का ही धंधा स्वीकार किया तथा अपनी रचनाओं में भी इस व्यवसाय से संबद्ध चरखा, पूनी, ताना-बाना आदि उपमानों का प्रतीक-रूप में प्रयोग किया। इनकी मृत्यु सन् १४९५ ई० में हुई।

कबीर मूलतः कवि नहीं वरन् संत थे। इन्होंने शास्त्रों का ज्ञान पंडितों और साधुओं से सुनकर प्राप्त किया था। ये पढ़े-लिखे नहीं थे। इन्होंने स्वयं कहा है— **'मसि कागद छूयौ नहीं कलम गही नहिं हाथ।'** परंतु फिर भी इनकी कविता में काव्य के अनेक तत्त्व अनायास मिल जाते हैं।

कहा जाता है कि जिस जुलाहा-वंश में इनका पालन-पोषण हुआ उस पर नाथपंथियों का प्रभाव था। स्वामी रामानंद इनके गुरु थे। उन्हीं के उपदेशों द्वारा इन्हें वेदांत और उपनिषदों का ज्ञान प्राप्त हुआ। देश-पर्यटन के समय ये गोरखपंथी योगियों के भी संपर्क में आए। सूफ़ी फकीरों का सत्संग भी इन्हें प्राप्त हुआ था, अतः इनकी रचनाओं में विभिन्न विचारधाराओं का प्रभाव परिलक्षित होता है।

धर्म के संबंध में इनके विचार बड़े उदार थे। ये राम और रहीम को एक मानते थे। समाज के क्षेत्र में कबीर ने हिन्दू तथा मुसलमान दोनों को एक ही दृष्टि से देखा-परखा और उन्हें सहयोग के साथ जीने का पाठ पढ़ाया। कबीर ने अपने उपदेशों में बाह्याडंबर का खंडन करते हुए गुरु-महिमा, ईश्वर-विश्वास, प्रेम, सत्संग, इंद्रिय-निग्रह, अहिंसा और सदाचार का महत्त्व बताया। ये अपनी बात बड़े निर्भीक भाव से कहते थे, इसलिए इनकी वाणी में कहीं-कहीं कटुता भी आ गई है।

इनकी भाषा में भोजपुरी, अवधी, ब्रज, राजस्थानी, पंजाबी, अरबी और फ़ारसी के शब्दों का प्रयोग मिलता है। **'कबीर ग्रंथावली'**, **'कबीर वचनावली'** तथा **'बीजक'** में इनकी रचनाएँ संगृहीत हैं।

कबीरदास

साखियाँ

सात समँद की मसि करौं, लेखनि सब बनराइ ।
धरती सब कागद करौं, हरि गुण लिखा न जाइ ॥१॥

कस्तूरी कुंडलि बसै, मृग ढूंढै बन माँहि ।
ऐसैं घटि घटि राम है, दुनियां देखै नाँहि ॥२॥

प्रेम न खेतौं नींपजै, प्रेम न हाटि बिकाइ ।
राजा परजा जेहि रुचै, सिर दे सो ले जाइ ॥३॥

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुवा, पंडित भया न कोइ ।
एकै आखर पीव का, पढ़ै सुपंडित होइ ॥४॥

कबीर सीप समंद की, रटै पियास पियास ।
समदहि तिनका बरि गिनै, स्वाँति बूंद की आस ॥५॥

कबीर माला काठ की, कहि समुझावै तोहि ।
मन न फिरावै आपना, कहा फिरावै मोहि ॥६॥

माया मुई न मन मुवा, मरि मरि गया सरीर ।
आसा त्रिष्णा ना मुई, यौं कहि गया कबीर ॥७॥

झूठे सुख कौं सुख कहै, मानत है मन मोद ।
खलक चबैना काल का, कुछ मुख मैं कुछ गोद ॥८॥

दुर्लभ मानुष जनम है, देह न बारंबार ।
तरवर ज्यों पत्ता झड़ै, बहुरि न लागै डार ॥९॥

कबीर संगति साध की, बेगि करीजै जाइ ।
दुरमति दूरि गँवाइसी, देसी सुमति बताइ ॥१०॥

बृच्छ कबहुँ नहिं फल भखैं, नदी न संचै नीर ।
परमारथ के कारने, साधुन धरा सरीर ॥११॥

साध बड़े परमारथी, घन ज्यों बरसैं आय।
तपन बुझावैं और की, अपनो पारस लाय ॥१२॥

सोना सज्जन साधु जन, टूटि जुरै सौ बार।
दुर्जन कुंभ कुम्हार के, एकै धका दरार ॥१३॥

जिहिं घरि साध न पूजिए, हरि की सेवा नाहिं।
ते घर मरघट सारखे, भूत बसै तिन माहिं ॥१४॥

मूरिख संग न कीजिए, लोहा जलि न तिराइ।
कदली, सीप, भुजंग मुख एक बूँद तिहुँ भाइ ॥१५॥

तिनका कबहुँ न निंदिए, जो पाँवन तर होय।
कबहूँ उड़ि आँखिन परै, पीर घनेरी होय ॥१६॥

बोली एक अमोल है, जो कोइ बोलै जानि।
हियै तराजू तौलि कै, तब मुख बाहर आनि ॥१७॥

ऐसी बांनी बोलिए, मन का आपा खोइ।
अपना तन सीतल करै, औरन कौं सुख होइ ॥१८॥

लघुता ते प्रभुता मिलै, प्रभुता ते प्रभु दूरि।
चींटी लै शक्कर चली, हाथी के सिर धूरि ॥१९॥

निन्दिक नियरे राखिए, आँगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करै सुभाय ॥२०॥

मानसरोवर सुभर जल, हंसा केलि कराहिं।
मुकताहल मुकता चुगैं, अब उड़ि अनत न जाहिं ॥२१॥

प्रश्न और अभ्यास

१. कबीर की साखियों के आधार पर निम्नलिखित वाक्यों को पूरा कीजिए:

(क) **मनुष्य शरीर बार-बार नहीं मिलता, जैसे कि...**

(ख) **अहंकार का त्याग कर ऐसी मधुर वाणी का प्रयोग कीजिए जो...**

२. नीचे कबीर के दो दोहों का सार दिया गया है; संबद्ध दोहे का पहला चरण

प्रत्येक के सामने लिखिए :

(अ) **नम्रता से ही उच्च स्थान मिलता है।**

(आ) **श्रेष्ठ मनुष्यों की संगति लाभप्रद होती है।**

३. निम्नलिखित शब्दों का प्रयोग करते हुए कबीरदास के उपदेश संक्षेप में लिखिए :

इंद्रिय-निग्रह, मृदु भाषण, तृष्णा, अनन्य प्रेम और सत्संग।

४. **कस्तूरी, सोना** तथा **कुंभ** उपमानों के प्रयोग द्वारा कबीर ने किस भाव की अभिव्यक्ति की है ?

५. निम्नलिखित शब्दों के आधुनिक रूप दीजिए :

त्रिष्णा, समँद।

६. साखी से क्या अभिप्राय है, कबीर के दोहों को साखियाँ क्यों कहा जाता है ?

नरोत्तमदास

नरोत्तमदास का जन्म सीतापुर जिले (उत्तरप्रदेश) के बाड़ी ग्राम के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। सन् १४९३ ई० के लगभग इनकी जन्मतिथि मानी जाती है। इनकी मृत्यु कब हुई, यह अज्ञात है।

नरोत्तमदास की दो रचनाओं का उल्लेख मिलता है—**'सुदामा-चरित'** और **'ध्रुव-चरित'**। इनमें से **'ध्रुव-चरित'** अभी तक अनुपलब्ध है। दूसरी रचना **'सुदामा-चरित'** एक खंडकाव्य है, जिसमें कृष्ण और सुदामा की मित्रता का भावपूर्ण और मार्मिक रीति से वर्णन किया गया है। इस काव्य में सुदामा की दरिद्रता और आत्मसम्मान की भावना तथा श्रीकृष्ण के अतुल वैभव और मैत्री भाव का सजीव चित्र उपलब्ध होता है। **'सुदामा-चरित'** हिन्दी का एक जनप्रिय काव्य है।

'सुदामा-चरित' की भाषा सरल और सजीव ब्रजभाषा है, जिसमें मुहावरों और लोकोक्तियों का सुंदर प्रयोग हुआ है। सामान्य गृहस्थ-जीवन के चित्रों ने इस काव्य को और भी आकर्षक बना दिया है। काव्य-सौन्दर्य के उत्कर्ष के लिए उपमा, रूपक, अनुप्रास आदि सामान्य अलंकारों की भी योजना की गई है, किन्तु उनमें कृत्रिमता का सर्वथा अभाव है। छंद-विधान की दृष्टि से नरोत्तमदास ने प्रायः कवित्त और सवैया छंद ही अपनाए हैं; कहीं-कहीं दोहा छंद का भी प्रयोग हुआ है।

सुदामा-चरित

बिप्र सुदामा बसत हो, सदा आपने धाम।
भीख माँगि भोजन करैं, हिये जपत हरि-नाम ॥१॥
ताकी घरनी पतिब्रता, गहे बेद की रीति।
सलज सुसील सुबुद्धि अति, पति-सेवा सौं प्रीति ॥२॥
कह्यौ सुदामा एक दिन, "कृस्न हमारे मित्र"।
करत रहति उपदेस तिय, ऐसो परम-विचित्र ॥३॥

स्त्री

लोचन - कमल दुख - मोचन तिलक भाल,
स्रबननि कुंडल मुकुट धरे माथ हैं।
ओढ़े पीत - बसन गरे मैं बैजयंती - माल,
संख चक्र गदा और पद्म लिए हाथ हैं॥
कहत नरोतम संदीपनि गुरू के पास,
तुम ही कहत हम पढ़े एक साथ हैं।
द्वारिका के गए हरि दारिद हरैंगे पिय,
द्वारिका के नाथ वै अनाथन के नाथ हैं ॥४॥

सुदामा

सिच्छक हौं सिगरे जग को तिय, ताको कहा अब देति है सिच्छा।
जे तप कै परलोक सुधारत, संपति की तिनके नहिं इच्छा॥
मेरे हिये हरि के पद - पंकज, बार हजार लै देखु परिच्छा।
औरन को धन चाहिय बावरि, बाँभन को धन केवल भिच्छा ॥५॥

स्त्री

कोदो सवाँ जुरतो भरि पेट, न चाहति हौं दधि दूध मिठौती।
सीत बितीतत जौ सिसियातहि हौं हठती पै तुम्हें न हठौती॥
जौ जनती न हितू हरि सों तुम्हें काहे को द्वारिकै पेलि पठौती।
या घर तें न गयो कबहूँ पिय! टूटो तवा अरु फूटी कठौती ॥६॥

सुदामा

छाँड़ि सबै जक तोहि लगी बक, आठहुँ जाम यहै जक ठानी।
जातहिं दैहैं लदाय लढ़ा भरि, लैहौं लदाय यहै जिय जानी॥
पावैं कहाँ तें अटारी अटा, जिनके विधि दीन्हीं है टूटी-सी-छानी।
जो पै दरिद्र लिखो है ललाट तौ, काहू पै मेटि न जात अजानी॥७॥

स्त्री

बिप्र के भगत हरि जगत - बिदित - बंधु,
लेत सब ही की सुधि ऐसे महादानि हैं।
पढ़े एक चटसार कही तुम कैयौ बार,
लोचन - अपार वै तुम्हैं न पहिचानिहैं ?
एक दीनबंधु, कृपासिंधु फेरि गुरुबंधु,
तुम - सम कौन दीन जाकौ जिय जानिहैं ?
नाम लेत चौगुनी, गए तें द्वार सौगुनी सो,
देखत सहस्र गुनी प्रीति प्रभु मानिहैं॥८॥

सुदामा

द्वारिका जाहु जू द्वारिका जाहु जू, आठहु जाम यहै जक तेरे।
जौ न कहौ करिए तो बड़ो दुख, जैए कहाँ अपनी गति हेरे।
द्वार खरे प्रभु के छरिया तहँ भूपति जान न पावत नेरे।
पाँच सुपारी तैं देखु विचारिकै, भेंट को चारि न चाउर मेरे॥९॥

यह सुनिकै तब ब्राह्मनी, गई परोसिनि - पास।
पाव - सेर चाउर लिए, आई सहित - हुलास॥१०॥

सिद्धि करी गनपति सुमिरि, बाँधि दुपटिया-खूँट।
माँगत खात चले तहाँ, मारग बाली - बूट॥११॥

दीठि चकचौंधि गई देखत सुबर्नमई,
एक तें सरस एक द्वारिका के भौन हैं।
पूछे बिन कोऊ कहूँ काहू सों न करै बात,
देवता-से बैठे सब साधि-साधि मौन हैं॥

देखत सुदामैं धाय पौरजन गहे पाय,
"कृपा करि कहौ बिप्र कहाँ कीन्ह गौन हैं ?"
"धीरज अधीर के, हरन पर पीर के,
बताओ बलबीर के महल यहाँ कौन हैं ?" ॥१२॥

द्वारपाल

सीस पगा न झँगा तन में, प्रभु, जानै को आहि, बसै केहि ग्रामा।
धोती फटी-सी लटी-दुपटी, अरु पाँय उपानह की नहिं सामा॥
द्वार खरो द्विज दुर्बल एक, रह्यो चकि सों बसुधा अभिरामा।
पूछत दीनदयाल को धाम, बतावत आपनो नाम सुदामा॥१३॥

बोल्यौ द्वारपालक 'सुदामा नाम पाँड़े', सुनि,
छाँड़े राज-काज ऐसे जी की गति जानै को ?
द्वारिका के नाथ हाथ जोरि धाय गहे पाँय,
भेंटे लपटाय करि ऐसे दुख-सानै को ?
नैन दोऊ जल भरि पूँछत कुसल हरि,
बिप्र बोल्यौ 'बिपदा मैं मोहि पहिचानै को ?
जैसी तुम करी तैसी करै को कृपा के सिन्धु !
ऐसी प्रीति दीनबंधु ! दीनन सों मानै को' ? ॥१४॥

ऐसे बेहाल बेवाइन सों, पग कंटक-जाल लगे पुनि जोए।
'हाय ! महादुख पायौ सखा, तुम आए इतै न कितै दिन खोए'।
देखि सुदामा की दीन दसा, करुना करिकै करुनानिधि रोए॥
पानी परात को हाथ छुयौ नहिं नैनन के जल सों पग धोए॥१५॥

श्रीकृष्ण

कछु भाभी हमकौ दियौ, सो तुम काहे न देत।
चाँपि पोटरी काँख में, रहे कहौ केहि हेत॥१६॥

आगे चना गुरु-मातु दए ते लए तुम चाबि हमें नहिं दीने।
स्याम कह्यो मुसुकाय सुदामा सों, 'चोरी की बानि मैं हौ जू प्रबीने॥
पोटरी काँख में चाँपि रहे तुम, खोलत नाहिं सुधा-रस-भीने।
पाछिली बानि अजौ न तजी तुम, तैसेई भाभी के तंदुल कीने' ॥१७॥

देनो हुतौ सो दै चुके, बिप्र न जानी गाथ ।
चलती बेर गोपालजू, कछू न दीन्हौ हाथ ॥१८॥

सुदामा

वह पुलकनि वह उठि मिलनि, वह आदर की भाँति ।
यह पठवनि गोपाल की, कछु न जानी जाति ॥१९॥

घर - घर कर ओड़त फिरे, तनक दही के काज ।
कहा भयौ जौ अब भयौ, हरि को राज - समाज ॥२०॥

हौं कब इत आवत हुतौ, वाही पठ्यौ ठेलि ।
कहिहौं धन सों जाइकै, अब धन धरौ सकेलि ॥२१॥

वैसेई राज-समाज बने, गज-बाजि घने मन संभ्रम छायौ ।
वैसेई कंचन के सब धाम हैं, द्वारिकै माँहि मनौं फिरि आयौ ॥
भौन बिलोकिबे को मन लोचत, सोचत ही सब गाँव मँझायौ ।
पूछत पाँड़े फिरे सब सों, पर झोंपरी को कहुँ खोज न पायौ ॥२२॥

कनक-दंड कर में लिए, द्वारपाल हैं द्वार ।
जाय दिखायौ सबनि लै, 'या है महल तुम्हार' ॥२३॥

टूटी-सी मड़िया मेरी परी हुती याही ठौर,
तामैं परो दुःख काटौं कहाँ हेम - धाम री ।
जेवर - जराऊ तुम साजे प्रति अंग - अंग,
सखी सोहैं संग वह छूछी हुती छाम री ॥
तुम तौ पटंबर री ! ओढ़े हौ किनारीदार,
सारी - जरतारी, वह ओढ़े कारी कामरी ।
मेरी वा पँड़ाइन तिहारी अनुहार ही पै,
बिपदा - सताई वह पाई कहाँ पामरी ? ॥२४॥

कै वह टूटी-सी छानी हती, कहँ कंचन के सब धाम सुहावत ।
कै पग मैं पनहीं न हती, कहँ लै गजराजहु ठाढ़े महावत ॥
भूमि कठोर पै रात कटै, कहँ कोमल सेज पै नींद न आवत ।
कै जुरतो नहिं कोदो सवाँ, प्रभु के परताप तें दाख न भावत ॥२५॥

('सुदामा-चरित' से)

प्रश्न और अभ्यास

१. सुदामा और कृष्ण की बाल-मैत्री की कहानी लिखिए।

२. सुदामा और उनकी पत्नी का कथोपकथन संवाद शैली में लिखिए।

३. इस कविता से सुदामा और कृष्ण के चरित्र की किन विशेषताओं पर प्रकाश पड़ता है ?

४. उक्त कविता में से चार सूक्तियों का चयन कीजिए।

५. श्रीकृष्ण ने सुदामा से क्या परिहास किया ? उसे स्पष्ट कीजिए।

६. '**सुदामा-चरित**' के कुछ सुंदर शब्द-चित्रों के उदाहरण दीजिए।

७. निम्नांकित शब्दों के खड़ी बोली के रूप लिखिए :
चाउर, जरतो, भयो, हतौ, वाही, धरौ, भौन।

तुलसीदास

तुलसीदास का जन्म सन् १५४० ई० के लगभग बाँदा जिले (उत्तरप्रदेश) के राजापुर गाँव में माना जाता है। कुछ विद्वान इनका जन्म-स्थान सोरों (उत्तरप्रदेश) भी मानते हैं। ये सम्राट अकबर और जहाँगीर के समकालीन थे। तुलसीदास के जीवन का अधिकांश समय काशी में व्यतीत हुआ और वहीं सन् १६२३ ई० में इनकी मृत्यु हुई। इनके पिता का नाम आत्माराम और माता का नाम हुलसी प्रसिद्ध है। बचपन से ही साधुओं के साथ रहने का इन्हें अवसर मिला। युवावस्था में इनका विवाह रत्नावली के साथ हुआ। ऐसी जनश्रुति है कि पत्नी के ही उपदेश से इन्हें वैराग्य हुआ था।

तुलसीदास ने मर्यादा पुरुषोत्तम राम को अवतारी-रूप में अपना आराध्य मानकर उनका चरित-गान किया है। रामायण की कथा को इन्होंने ऐसे आदर्श रूप में प्रस्तुत किया है कि उसे पढ़कर सभी को जीवन-निर्माण की प्रेरणा मिलती है। तुलसीदास के काव्य की विशेषता यह भी है कि इन्होंने अपने समय तक प्रचलित सभी काव्य-शैलियों का सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। भाषा, भाव और छंदों का ऐसा समन्वय अन्यत्र दुर्लभ है। तुलसीदास ने अपने काव्य के माध्यम से विभिन्न संप्रदायों में समन्वय स्थापित करने का भी प्रयास किया है। सांस्कृतिक प्रभाव की दृष्टि से इनकी गणना सर्वोत्तम कवियों में की जा सकती है। इनके काव्य को पढ़ने से स्पष्ट विदित होता है कि ये संस्कृत भाषा के भी पूरे पंडित थे, किन्तु इन्होंने जानबूझकर हिन्दी भाषा को अपने काव्य के लिए चुना था। अवधी और ब्रजभाषा दोनों में ही तुलसी ने काव्य-रचना की है।

तुलसीदास के बारह ग्रंथ प्रसिद्ध हैं; इनमें **'रामचरितमानस'**, **'विनयपत्रिका'**, **'कवितावली'**, **'गीतावली'** और **'दोहावली'** की ख्याति अधिक है। **'रामचरितमानस'** इनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है। **'रामचरितमानस'** में प्रबंध, संवाद, चरित्र-चित्रण, प्रकृति-वर्णन सभी कुछ अद्भुत है।

तुलसीदास

सीता-स्वयंवर

(प्रस्तुत अवतरण 'रामचरितमानस' के बालकांड से लिया गया है। इसमें धनुर्भंग और सीता-स्वयंवर का वर्णन है।)

दो०—उदित उदय - गिरि - मंच पर रघुबर बालपतंग।
बिकसे संतसरोज सब हरषे लोचन भृंग ॥१॥

नृपन्ह केरि आसा निसि नासी। बचन नखत अवली न प्रकासी ॥
मानी महिप कुमुद सकुचाने। कपटी भूप उलूक लुकाने ॥
भए बिसोक कोक मुनि देवा। बरषहिं सुमन जनावहिं सेवा ॥
गुरुपद बंदि सहित अनुरागा। राम मुनिन्ह सन आयसु माँगा ॥
सहजहिं चले सकल-जग-स्वामी। मत्त - मंजु - बर - कुंजर - गामी ॥
चलत राम सब पुर - नर - नारी। पुलक - पूरि - तन भए सुखारी ॥
बंदि पितर सब सुकृत सँभारे। जौं कछु पुन्य प्रभाव हमारे ॥
तौ सिवधनु मृनाल की नाईं। तोरहिं राम गनेस गोसाईं ॥

दो०—रामहिं प्रेम समेत लखि सखिन्ह समीप बोलाइ।
सीतामातु सनेहबस बचन कहइ बिलखाइ ॥२॥

सखि सब कौतुक देख निहारे। जेउ कहावत हितू हमारे ॥
कोउ न बुझाइ कहइ नृप पाहीं। ए बालक अस हठ भल नाहीं ॥
रावन बान छुआ नहिं चापा। हारे सकल भूप करि दापा ॥
सो धनु राज-कुँअर - कर देहीं। बालमराल कि मंदर लेहीं ॥
भूपसयानप सकल सिरानी। सखि बिधिगति कहि जाति न जानी ॥
बोली चतुर सखी मृदु बानी। तेजवंत लघु गनिय न रानी ॥
कहँ कुंभज कहँ सिन्धु अपारा। सोखेउ सुजस सकल संसारा ॥
रविमंडल देखत लघु लागा। उदय तासु त्रि-भुवन-तम भागा ॥

दो०—मंत्र परमलघु जासु बस बिधि हरि हर सुर सर्ब।
महा-मत्त-गज-राज कहँ बस कर अंकुस खर्ब ॥३॥

काम कुसुम-धनु - सायक लीन्हे। सकल भुवन अपने बस कीन्हे ॥

देवि तजिय संसय अस जानी । भंजब धनुषु राम सुनु रानी ॥
सखी - बचन सुनि भइ परतीती । मिटा बिषादु बढ़ी अतिप्रीती ॥
तब रामहिं बिलोकि बैदेही । सभय हृदय बिनवति जेहि तेही ॥
मनहीं मन मनाव अकुलानी । होउ प्रसन्न महेस भवानी ॥
करहु सुफल आपनि सेवकाई । करि हित हरहु चापगरुआई ॥
गननायक बरदायक देवा । आजु लगे कीन्हिउँ तुव सेवा ॥
बार बार सुनि बिनती मोरी । करहु चापगुरुता अति थोरी ॥

दो०—देखि देखि रघुबीर-तन सुर मनाव धरि धीर ।
भरे बिलोचन प्रेमजल पुलकावली सरीर ॥४॥

नीके निरखि नयन भरि सोभा । पितु पनु सुमिरि बहुरि मन छोभा ॥
अहह तात दारुनहठ ठानी । समुझत नहिं कछु लाभु न हानी ॥
सचिव सभय सिख देइ न कोई । बुधसमाज बड़ अनुचित होई ॥
कहँ धनु कुलिसहु चाहि कठोरा । कहँ स्यामल मृदुगात किसोरा ॥
बिधि केहि भाँति धरउँ उर धीरा । सिरिस-सुमन-कन बेधिय हीरा ॥
सकल सभा कै मति भइ भोरी । अब मोहि संभु-चाप-गति तोरी ॥
निज जड़ता लोगन्ह पर डारी । होहु हरुअ रघुपतिहिं निहारी ॥
अति परिताप सीयमन माहीं । लवनिमेष जुगसय सम जाहीं ॥

दो०—प्रभुहि चितइ पुनि चितइ महि राजत लोचन लोल ।
खेलत मनसिजु-मीन-जुग जनु बिधुमंडल डोल ॥५॥

गिराअलिनि मुखपंकज रोकी । प्रगट न लाजनिसा अवलोकी ॥
लोचनजलु रह लोचनकोना । जैसे परम कृपन कर सोना ॥
सकुची ब्याकुलता बड़ि जानी । धरि धीरज प्रतीति उर आनी ॥
तन मन बचन मोर पनु साचा । रघुपति-पद-सरोज चितु राचा ॥
तौ भगवान सकल-उर-बासी । करिहहिं मोहि रघुबर कै दासी ॥
जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू । सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू ॥
प्रभुतन चितइ प्रेमपन ठाना । कृपानिधान राम सब जाना ॥
सियहि बिलोकि तकेउ धनु कैसे । चितव गरुड़ लघुब्यालहि जैसे ॥

दो०—लषन लखेउ रघुबंस - मनि ताकेउ हरकोदंड ।
पुलकि गात बोले बचन चरन चाँपि ब्रह्मंड ॥६॥

दिसिकुंजरहु कमठ अहि कोला । धरहु धरनि धरि धीर न डोला ॥
राम चहहिं संकरधनु तोरा । होहु सजग सुनि आयसु मोरा ॥
चापसमीप राम जब आए । नरनारिन्ह सुर सुकृत मनाए ॥
सब कर संसय अरु अग्यानू । मंद महीपन्ह कर अभिमानू ॥
भृगुपति केरि गरब गरुआई । सुर-मुनि - बरन्ह केरि कदराई ॥
सिय कर सोचु जनक पछितावा । रानिन्ह कर दारुन-दुख-दावा ॥
संभुचाप बड़ बोहित पाई । चढ़े जाइ सब संगु बनाई ॥
राम - बाहु - बल - सिन्धु अपारू । चहत पार नहिं कोउ कनहारू ॥

दो०—राम बिलोके लोग सब चित्र लिखे से देखि ।
चितई सीय कृपायतन जानी बिकल बिसेखि ॥७॥

देखी बिपुल बिकल बैदेही । निमिष बिहात कलपसम तेही ॥
तृषित बारि बिनु जो तनु त्यागा । मुए करइ का सुधातड़ागा ॥
का बरषा जब कृषी सुखाने । समय चुके पुनि का पछताने ॥
अस जिय जानि जानकी देखी । प्रभु पुलके लखि प्रीति बिसेखी ॥
गुरुहिं प्रनाम मनहिं मन कीन्हा । अतिलाघव उठाइ धनु लीन्हा ॥
दमकेउ दामिनि जिमि जब लयऊ । पुनि धनु नभ-मंडल-सम भयऊ ॥
लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े । काहु न लखा देख सब ठाढ़े ॥
तेहि छन राम मध्य धनु तोरा । भरेउ भुवन धुनि घोर कठोरा ॥

छंद—भरे भुवन घोर कठोर रव रबिबाजि तजि मारगु चले ।
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कलमले ॥
सुर असुर मुनि कर कान दीन्हे सकल बिकल बिचारहीं ।
कोदंड खंडेउ राम तुलसी जयति बचन उचारहीं ॥

सो०—संकर चाप जहाज सागर रघुबर - बाहु - बल ।
बूड़ सो सकल समाज चढ़े जो प्रथमहिं मोहबस ॥८॥

प्रभु दोउ चापखंड महि डारे । देखि लोग सब भए सुखारे ॥
कौसिक - रूप - पयोनिधि पावन । प्रेमबारि अवगाहु सुहावन ॥

राम - रूप - राकेस निहारी। बढ़त बीचि पुलकावलि भारी ॥
बाजे नभ गहगहे निसाना। देवबधू नाचहिं करि गाना ॥
ब्रह्मादिक सुर सिद्ध मुनीसा। प्रभुहि प्रसंसहिं देहिं असीसा ॥
बरषहिं सुमन रंग बहु माला। गावहिं किन्नर गीत रसाला ॥
रही भुवन भरि जय जय बानी। धनुष-भंग-धुनि जात न जानी ॥
मुदित कहहिं जहँ तहँ नर नारी। भंजेउ राम संभुधनु भारी ॥

दो०—बंदी मागध सूतगन बिरद बदहिं मतिधीर।
करहिं निछावरि लोग सब हय गय मनि धन चीर ॥९॥

झाँझि मृदंग संख सहनाई। भेरि ढोल दुंदुभी सुहाई ॥
बाजहिं बहु बाजने सुहाए। जहँ तहँ जुबतिन्ह मंगल गाए ॥
सखिन्ह सहित हरषीं सब रानी। सूखत धानु परा जनु पानी ॥
जनक लहेउ सुख सोच बिहाई। पैरत थके थाह जनु पाई ॥
श्रीहत भए भूप धनु टूटे। जैसे दिवस दीप छवि छूटे ॥
सीयसुखहि बरनिय केहि भाँती। जनु चातकी पाइ जलस्वाती ॥
रामहि लषनु बिलोकत कैसे। ससिहि चकोरकिसोरकु जैसे ॥
सतानंद तब आयसु दीन्हा। सीता गमन राम पहिं कीन्हा ॥

दो०—संग सखी सुंदर चतुर गावहिं मंगलचार।
गवनी बाल-मराल-गति सुषमा अंग अपार ॥१०॥

सखिन्ह मध्य सिय सोहति कैसी। छबि-गन-मध्य महाछबि जैसी ॥
करसरोज जयमाल सुहाई। बिस्व - बिजय - सोभा जनु छाई ॥
तन सकोच मन परम उछाहू। गूढ़प्रेम लखि परइ न काहू ॥
जाइ समीप रामछबि देखी। रहि जनु कुअँरि चित्रअवरेखी ॥
चतुर सखी लखि कहा बुझाई। पहिरावहु जयमाल सुहाई ॥
सुनत जुगल कर माल उठाई। प्रेमबिबस पहिराइ न जाई ॥
सोहत जनु जुगजलज सनाला। ससिहि सभीत देत जयमाला ॥
गावहिं छबि अवलोकि सहेली। सिय जयमाल रामउर मेली ॥

सो०—रघुबरउर जयमाल देखि देव बरषहिं सुमन।
सकुचे सकल भुआल जनु बिलोकि रवि कुमुदगन ॥११॥
('रामचरितमानस' से)

वन-यात्रा

बनिता बनी स्यामल गौर के बीच,
बिलोकहु, री सखि ! मोहि-सी ह्वै।
मगजोगु न कोमल, क्यों चलिहै,
सकुचाति मही पदपंकज छ्वै ॥
तुलसी सुनि ग्रामबधू बिथकीं,
पुलकीं तन, औ चले लोचन च्वै।
सब भाँति मनोहर मोहनरूप,
अनूप हैं भूप के बालक द्वै ॥१॥

साँवरे - गोरे सलोने सुभायँ, मनोहरताँ जिति मैनु लियो है।
बान - कमान, निषंग कसे, सिर सोहैं जटा, मुनिवेषु कियो है ॥
संग लिएँ बिधुबैनी बधू, रति को जेहि रंचक रूपु दियो है।
पायन तौ पनहीं न, पयादेंहि क्यों चलिहैं, सकुचात हियो है ॥२॥

रानी मैं जानी अयानी महा, पबि - पाहनहू तें कठोर हियो है।
राजहुँ काजु अकाजु न जान्यो, कह्यो तिय को जेंहि कान कियो है ॥
ऐसी मनोहर मूरति ए, बिछुरें कैसे प्रीतम लोगु जियो है।
आँखिन में सखि ! राखिबे जोगु, इन्हें किमि कै बनवासु दियो है ॥३॥

सीस जटा उर-बाहु बिसाल, बिलोचन लाल, तिरीछी-सी भौंहें।
तून सरासन - बान धरें तुलसी बन - मारग में सुठि सोहैं।
सादर बारहिं बार सुभायँ चितै तुम्ह त्यों हमरो मनु मोहैं।
पूँछति ग्रामबधू सिय सों, कहौ साँवरे-से सखि रावरे को हैं ॥४॥

सुनि सुंदर बैन सुधारस - साने सयानी हैं जानकी जानी भली।
तिरछे करि नैन, दै सैन, तिन्हें समुझाइ, कछू मुसुकाइ चली ॥

तुलसी तेहि औसर सोहैं सबै अवलोकति लोचनलाहु अली ।
अनुराग-तड़ाग में भानु उदै बिगसीं मनो मंजुल कंजकली ।।५।।

धरि धीर कहैं, चलु देखिअ जाइ, जहाँ सजनी ! रजनी रहिहैं ।
कहिहै जगु पोच न सोचु कछू, फलु लोचन आपन तौ लहिहैं ।।
सुखु पाइहैं कान सुनें बतियाँ कल आपुस में कछु पै कहिहैं ।
तुलसी अति प्रेम लगीं पलकैं, पुलकीं लखि रामु हिये महि हैं ।।६।।

('कवितावली' से)

विनय

ऐसो को उदार जग माहीं ।
बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाहीं ।।
जो गति जोग बिराग जतन करि नहिं पावत मुनि ग्यानी ।
सो गति देत गीध सबरी कहुँ प्रभु न बहुत जिय जानी ।।
जो संपति दस सीस अरप करि रावन सिव पहँ लीन्हीं ।
सो संपदा बिभीषन कहँ अति सकुच-सहित हरि दीन्हीं ।।
तुलसिदास सब भाँति सकल सुख जो चाहसि मन मेरो ।
तौ भजु राम, काम सब पूरन करैं कृपानिधि तेरो ।।१।।

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो ।
श्रीरघुनाथ-कृपालु-कृपा तें संत-सुभाव गहौंगो ।।
जथालाभसंतोष सदा, काहू सों कछु न चहौंगो ।
पर-हित-निरत-निरंतर, मन-क्रम-बचन नेम निबहौंगो ।।
परुष बचन अति दुसह श्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो ।
बिगत मान, सम सीतल मन, पर-गुन नहिं दोष कहौंगो ।।
परिहरि देह-जनित चिंता, दुख-सुख सम बुद्धि सहौंगो ।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि अबिचल हरि-भगति लहौंगो ।।२।।

जाके प्रिय न राम-बैदेही ।
तजिए ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही ।।
तज्यो पिता प्रह्लाद, बिभीषन बंधु, भरत महतारी ।
बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रज-बनितन्हि, भए मुद-मंगलकारी ।।
नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेब्य जहाँ लौं ।
अंजन कहा आँखि जेहि फूटै, बहुतक कहौं कहाँ लौं ।।
तुलसी सो सब भाँति परम हित पूज्य प्रान ते प्यारो ।
जासों होय सनेह राम-पद, एतो मतो हमारो ।।३।।

('विनयपत्रिका' से)

दोहे

एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास ।
एक राम घन स्याम हित चातक तुलसीदास ।।१।।

चातक तुलसी के मतें स्वातिहुँ पिऐ न पानि ।
प्रेम तृषा बाढ़ति भली घटें घटेगी आनि ।।२।।

रटत रटत रसना लटी तृषा सूखिगे अंग ।
तुलसी चातक प्रेम को नित नूतन रुचि रंग ।।३।।

बरषि परुष पाहन पयद पंख करौ टुक टूक ।
तुलसी परी न चाहिऐ चतुर चातकहि चूक ।।४।।

उपल बरषि गरजत तरजि डारत कुलिस कठोर ।
चितव कि चातक मेघ तजि कबहुँ दूसरी ओर ।।५।।

मान राखिबो माँगिबो पिय सों नित नव नेहु ।
तुलसी तीनिउ तब फबैं जो चातक मत लेहु ।।६।।

तीनि लोक तिहुँ काल जस चातक ही के माथ ।
तुलसी जासु न दीनता सुनी दूसरे नाथ ।। ७।।

नहिं जाचत नहिं संग्रही सीस नाइ नहिं लेइ।
ऐसे मानी माँगनेहि को बारिद बिन देइ ॥८॥

मुख मीठे मानस मलिन कोकिल मोर चकोर।
सुजस धवल चातक नवल रह्यो भुवन भरि तोर ॥९॥

बास बेष बोलनि चलनि मानस मंजु मराल।
तुलसी चातक प्रेम की कीरति बिसद बिसाल ॥१०॥

('दोहावली' से)

प्रश्न और अभ्यास

१. राम को देखकर सीता की माँ के हृदय में क्या भावना उठी और सखियों से उनका क्या वार्तालाप हुआ ?

२. धनुर्भंग का अपने शब्दों में वर्णन कीजिए।

३. पठित छंदों के आधार पर वन जाते हुए राम, लक्ष्मण और सीता के रूप-सौन्दर्य का चित्रण कीजिए।

४. तुलसीदास के दोहों में चातक किसका प्रतीक है और उसके किन गुणों की प्रशंसा तुलसी ने की है ?

. निम्नांकित पंक्तियों का आशय स्पष्ट कीजिए :

(क) उदित उदयगिरि मंच........
(ख) प्रभुहि चितइ पुनि चितइ महि....
(ग) गिरा अलिनि मुख पंकज रोकी....
(घ) संकर चाप जहाज........
(ङ) सुनत जुगल कर माल उठाई........
(च) अनुराग तड़ाग में भानु उदै........
(छ) विगत मान, सम सीतल मन........
(ज) उपल बरषि गरजत तरजि........

६. गीध, शबरी, बलि और प्रह्लाद से संबद्ध अंतःकथाएँ लिखिए।

७. निम्नलिखित उपमानों के उपमेय बताइए :
बालपतंग, कुमुद, उलूक, जलज सनाला, बालमराल।

रहीम

अब्दुर्रहीम खानखाना अपने समय के वीर योद्धा, कुशल राजनीति-वेत्ता और सहृदय कवि थे। इनका जन्म सन् १५५६ ई० में लाहौर (पश्चिमी पंजाब, पाकिस्तान) में हुआ था। अकबर के अभिभावक बैरम खाँ इनके पिता थे। रहीम अरबी, फ़ारसी, तुर्की, हिन्दी और संस्कृत के विद्वान थे। सन् १६२७ ई० में इनकी मृत्यु हुई। रहीम का मक़बरा दिल्ली में बना हुआ है।

अध्ययन और ज्ञानार्जन में रुचि होने पर भी इन्हें युद्ध-क्षेत्र में ही अपने जीवन का अधिक समय व्यतीत करना पड़ा। इनके जीवन में बड़े उतार-चढ़ाव आए। रहीम को अपनी बहादुरी और पराक्रम के लिए सूबेदारी और जागीरें भी मिलीं तथा सम्राट जहाँगीर के कोप के कारण दारिद्र्य भी भोगना पड़ा। ये बड़े उदार दानी थे। कहते हैं अंत समय तक इनके यहाँ से किसी याचक को निराश नहीं लौटना पड़ा।

रहीम के दोहों में लोकव्यवहार, नीति, भक्ति तथा अन्य अनुभूतियों का सुंदर समन्वय हुआ है। दोहों के अतिरिक्त रहीम ने श्रृंगार और प्रेम के बरवै भी लिखे हैं। इनकी रचना में भारतीय जीवन के सजीव चित्र अंकित हैं। रहीम ने खड़ीबोली में भी कुछ पद्य लिखे हैं। ब्रजभाषा, अवधी, खड़ीबोली और संस्कृत की रचनाओं से इनके बहुभाषा-ज्ञान का पता चलता है।

रहीम ने अनेक काव्य-ग्रंथों का प्रणयन किया है, जिनमें से **'दोहावली'**, **'बरवै नायिकाभेद'**, **'रासपंचाध्यायी'** तथा **'मदनाष्टक'** अधिक प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि इन्होंने एक सतसई भी लिखी थी, किन्तु वह अभी तक उपलब्ध नहीं हुई।

दोहे

अमरबेलि बिन मूल की, प्रतिपालत है ताहि।
रहिमन ऐसे प्रभुहिं तजि, खोजत फिरिए काहि ॥१॥

दीन सबन को लखत है, दीनहिं लखै न कोय।
जो रहीम दीनहिं लखै, दीनबंधु सम होय ॥२॥

ससि, सँकोच, साहस, सलिल, मान, सनेह रहीम।
बढ़त बढ़त बढ़ि जात है, घटत घटत घटि सीम ॥३॥

वे रहीम नर धन्य हैं, पर उपकारी अंग।
बाँटनवारे को लगे, ज्यों मेंहदी को रंग ॥४॥

रहिमन पानी राखिए, बिनु पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरे, मोती, मानुष, चून ॥५॥

खीरा सिर तें काटिए, मलियत नमक बनाय।
रहिमन करुए मुखन को, चहिअत इहै सजाय ॥६॥

दीरघ दोहा अरथ के, आखर थोरे आहिं।
ज्यों रहीम नट कुंडली, सिमिटि कूदि कढ़ि जाहिं ॥७॥

रहिमन वहाँ न जाइए, जहाँ कपट को हेत।
हम तन ढारत ढेकुली, सींचत अपनो खेत ॥८॥

एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय।
रहिमन मूलहि सींचिबो, फूलहि फलहि अघाय ॥९॥

कदली, सीप, भुजंग-मुख, स्वाँति एक गुण तीन।
जैसी संगति बैठिए, तैसोई फल दीन ॥१०॥

कहि रहीम संपति सगे, बनत बहुत बहु रीत।
बिपति-कसौटी जे कसे, सोही साँचे मीत ॥११॥

कैसे निबहैं निबल जन, करि सबलन सों गैर ।
रहिमन बसि सागर बिषे, करत मगर सों बैर ॥१२॥

जिहि अंचल दीपक दुर्‌यो, हन्यो सो ताही गात ।
रहिमन असमय के परै, मित्र शत्रु ह्वै जात ॥१३॥

जे गरीब पर हित करें, ते रहीम बड़ लोग ।
कहाँ सुदामा बापुरो, कृष्ण - मिताई जोग ॥१४॥

जैसी परे सो सहि रहे, कहि रहीम यह देह ।
धरती ही पर परत है, सीत, घाम औ मेह ॥१५॥

जो बड़ेन को लघु कहें, नहिं रहीम घटि जाहिं ।
गिरधर मुरलीधर कहे, कछु दुख मानत नाहिं ॥१६॥

जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग ।
चंदन बिष ब्यापत नहीं, लपटे रहत भुजंग ॥१७॥

जो रहीम गति दीप की, कुल कपूत गति सोय ।
बारे उजियारो लगे, बढ़े अँधेरो होय ॥१८॥

जो रहीम मन हाथ है, तो तन कहुँ किन जाहिं ।
जल में जो छाया परे, काया भीजति नाहिं ॥१९॥

टूटे सुजन मनाइए, जौ टूटे सौ बार ।
रहिमन फिरि फिरि पोइए टूटे मुक्ताहार ॥२०॥

तरुवर फल नहिं खात हैं, सरवर पियहिं न पान ।
कहि रहीम पर काज हित, संपति सँचहिं सुजान ॥२१॥

धनि रहीम गति मीन की, जल बिछुरत जिय जाय ।
जियत कंज तजि अनत बसि, कहा भौंर को भाय ॥२२॥

प्रीतम छबि नैनन बसी, पर छबि कहाँ समाय ।
भरी सराय रहीम लखि, पथिक आप फिरि जाय ॥२३॥

रन, बन, ब्याधि, बिपत्ति में, रहिमन मरै न रोय ।
जो रच्छक जननी जठर, सो हरि गए कि सोय ॥२४॥

जाल परे जल जात बहि, तजि मीनन को मोह ।
रहिमन मछरी नीर को, तऊ न छाड़त छोह ॥२५॥

('रहीम रत्नावली' से)

प्रश्न और अभ्यास

१. रहीम ने संकोच, साहस, मान और स्नेह की सलिल और शशि से क्यों तुलना की है ? इस दोहे का सौन्दर्य स्पष्ट कीजिए ।

२. नीचे, पहले स्तंभ में कुछ दोहों के सारांश तथा तीसरे स्तंभ में उनके प्रथम चरण बिना क्रम के दिए गए हैं । दूसरे स्तंभ में प्रथम चरणों को सारांश के क्रम से लिखिए, जैसे पहले सारांश—**संगत के अनुरूप फल मिलता है**—से संबद्ध चरण **कदली, सीप** .... आदि को उसके सामने दूसरे स्तंभ में लिख दिया गया है :

(क) संगत के अनुरूप फल मिलता है ।	कदली, सीप, भुजंग-मुख...	जैसी परै सो सहि रहे ....
(ख) सच्चे मित्र वही हैं जो विपत्ति में साथ रहते हैं ।		खीरा सिर तें काटिए ....
(ग) कठिनाइयों को धैर्यपूर्वक सहन करना चाहिए ।		कहि रहीम संपति सगे ....
(घ) विपत्ति में अधीर नहीं होना चाहिए ।		जो रहीम उत्तम प्रकृति ....
(ङ) अच्छे लोग कुसंगति से अप्रभावित रहते हैं ।		कदली, सीप, भुजंग-मुख ....
(च) कटुभाषी को कड़ा दंड मिलना चाहिए ।		रन, बन, ब्याधि, बिपत्ति में ....

३. निम्नांकित विषयों से संबद्ध दोहे और उनके अर्थ लिखिए :
परोपकार, मित्रता, प्रेम ।

४. पाँचवें दोहे में **पानी** शब्द का प्रयोग किस-किस अर्थ में हुआ है ? विभिन्न अर्थों का संबंध **मोती, मानुष** और **चून** के साथ दिखाइए ।

५. अठारहवें दोहे में **'बारे'** और **'बढ़े'** शब्दों के दो-दो अर्थ बताइए तथा **दीपक** और **कपूत** से उनका संबंध व्यक्त कीजिए ।

६. **सुजन** और **मुक्ताहार** के रूपक को स्पष्ट कीजिए ।

रसखान

रसखान का जन्म सन् १५५८ ई० के आस-पास हुआ था। ये दिल्ली के पठान सरदार थे। अपने एक दोहे में इन्होंने **'बादसा बंस की ठसक'** और दिल्ली छोड़ने का उल्लेख इस प्रकार किया है:

देखि गदर हित साहिबी, दिल्ली नगर मसान।
छिनहिं बादसा बंस की ठसक छाँड़ि रसखान ॥

इनका मूल नाम सैयद इब्राहीम था। श्रीकृष्ण के प्रति रसमयी भक्ति-भावना के कारण भक्तजन इन्हें रसखान नाम से पुकारने लगे थे। आरंभ में ये बड़े प्रेमी स्वभाव के थे। वैष्णवों के उपदेश और सत्संग से इनका लौकिक प्रेम भगवान कृष्ण के अलौकिक प्रेम में परिणत हो गया। इनके प्रेम की गहराई और सचाई देखकर ही गोसाईं विट्ठलनाथ जी ने इन्हें शिष्य-रूप में स्वीकार कर लिया था। गोसाईं जी के २५२ प्रधान शिष्यों में रसखान की भी गणना हुई है। सन् १६१८ ई० के आसपास इनकी मृत्यु हुई।

कवि की केवल दो रचनाएँ प्राप्त हैं—**'सुजान रसखान'** और **'प्रेमवाटिका'**। **'सुजान रसखान'** में कवित्त-सवैये तथा **'प्रेमवाटिका'** में दोहे हैं। अनन्य भक्ति और तीव्र अनुभूति रसखान की रचनाओं की प्रमुख विशेषताएँ हैं। इनका मुख्य विषय कृष्ण-प्रेम है। कृष्ण और उनसे संबंध रखनेवाली सभी वस्तुएँ इन्हें अत्यंत प्रिय थीं। इनकी संपूर्ण कविता कृष्ण-प्रेम और ब्रज-प्रेम से भरी हुई है।

रसखान की भाषा सरस और सरल ब्रजभाषा है। ऐसी मधुर, व्यवस्थित और आडंबर-मुक्त ब्रजभाषा बहुत कम कवियों में मिलेगी। मुहावरों ने इनकी भाषा को और भी अधिक सजीव एवं आकर्षक बना दिया है। अनुप्रास की अपूर्व छटा भी बड़ी मनोहारिणी है।

रसखान

कृष्णभक्ति और ब्रज-प्रेम

मानुष हौं तौ वही रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन ।
जौ पसु हौं तौ कहा बस मेरो चरौं नित नंद की धेनु मँझारन ।
पाहन हौं तौ वही गिरि को जो धर्यौ कर छत्र पुरंदर-धारन ।
जौ खग हौं तो बसेरो करौं मिलि कालिन्दी-कूल कदंब की डारन ।।१।।

वा लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुर को तजि डारौं ।
आठहु सिद्धि नवौ निधि को सुख नंद की गाइ चराइ बिसारौं ।
ए रसखानि जबै इन नैनन तें ब्रज के बन-बाग निहारौं ।
कोटिक ये कलधौत के धाम करील की कुंजन ऊपर वारौं ।।२।।

धूरिभरे अति सोभित स्यामजू तैसी बनी सिर सुंदर चोटी ।
खेलत खात फिरैं अँगना पग पैजनी बाजति पीरी कछोटी ।
वा छबि कों रसखानि बिलोकत वारत काम कला निज कोटी ।
काग के भाग बड़े सजनी हरि-हाथ सों लै गयौ माखन - रोटी ।।३।।

काननि दै अँगुरी रहिबो जबहीं मुरली धुनि मंद बजैहै ।
मोहनी ताननि सों रसखानि अटा चढ़ि गोधन गैहै तौ गैहै ।
टेरि कहौं सिगरे ब्रज लोगनि काल्हि कोऊ सु कितौ समुझैहै ।
माइ री वा मुख की मुसकानि सम्हारी न जैहै न जैहै न जैहै ।।४।।

मौर की चटक औ लटक नव कुंडल की,
भौंह की मटक नेह आँखिन दिखाउ रे ।
मोहन सुजान गुन - रूप के निधान, फेरि,
बाँसुरी बजाइ तनु - तपन सिराउ रे ।
एहो बनवारी बलिहारी जाउँ तेरी आजु,
मेरी कुंज आइ नेकु मीठी तान गाउ रे ।
नंद के किसोर चितचोर मोरपंखवारे,
बंसीवारे साँवरे पियारे इत आउ रे ।।५।।

प्रान वही जु रहैं रिझि वा पर रूप वही जिहि वाहि रिझायौ ।
सीस वही जिन वे परसे पद अंक वही जिन वा परसायौ ।
दूध वही जु दुहायौ री वाही दही सु सही जु वही ढरकायौ ।
और कहाँ लौं कहौं रसखानि री भाव वही जु वही मन भायौ ।।६।।

सोहत हैं चँदवा सिर मोर के तैसियै सुंदर पाग कसी है ।
तैसियै गोरज भाल बिराजति जैसो हियें बनमाल लसी है ।
रसखानि बिलोकत बौरी भई दृग मूँदिकै ग्वालि पुकारि हँसी है ।
खोलि री नैननि, खोलौं कहा वह मूरति नैननि माँझ बसी है ।।७।।

सेष गनेस महेस दिनेस, सुरेसहु जाहि निरंतर गावैं ।
जाहि अनादि अनंत अखंड, अछेद अभेद सुबेद बतावैं ।
नारद से सुक ब्यास रहैं, पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं ।
ताहि अहीर की छोहरियाँ, छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं ।।८।।

('रसखानि ग्रंथावली' से)

प्रश्न और अभ्यास

१. प्रथम छंद में व्यक्त रसखान की अभिलाषा अपने शब्दों में प्रकट कीजिए ।
२. पाठ के आधार पर निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर दीजिए :
   (क) 'काग के भाग' को क्यों बड़ा बताया गया है ?
   (ख) मुरली बजने पर गोपियाँ कानों में अँगुली क्यों देना चाहती हैं ?
३. प्रस्तुत पाठ में से कौन-सा छंद आपको सर्वाधिक प्रिय लगता है—और क्यों ?
४. रसखान का मूल नाम क्या था ? इनकी रचना के आधार पर उपनाम की सार्थकता सिद्ध कीजिए ।
५. छठे सवैये के अंतिम चरण में तथा नवें कवित्त के प्रथम चरण में कौन-सा शब्दालंकार है ? परिभाषा देकर समझाइए ।
६. नीचे लिखे शब्दों के दो-दो पर्याय बताइए :
   कलधौत, कालिन्दी तथा पुरंदर ।

मैथिलीशरण गुप्त

मैथिलीशरण गुप्त का जन्म उत्तरप्रदेश के अंतर्गत चिरगाँव, जिला झाँसी के एक प्रतिष्ठित वैश्य परिवार में सन् १८८६ ई० में हुआ था। इनके पिता सेठ रामचरण गुप्त निष्ठावान् भक्त तथा कवि थे। माता भी श्रद्धालु भक्त महिला थीं। आरंभिक शिक्षा इन्हें चिरगाँव की ही पाठशाला में मिली; फिर ये झाँसी के मेकडॉनल स्कूल में भरती हुए। किन्तु वहाँ से शीघ्र ही लौट आए और इन्होंने प्रायः घर पर रहकर ही स्वाध्याय के द्वारा हिन्दी, संस्कृत और बंगला साहित्य का ज्ञान प्राप्त किया।

गुप्त जी के काव्य में मानव-जीवन की प्रायः सभी अवस्थाओं एवं परिस्थितियों का वर्णन हुआ है। अतः इनकी रचनाओं में सभी रसों के उदाहरण मिलते हैं। इन्होंने पिछले पचास-पचपन वर्षों में प्रचलित सभी काव्य-शैलियों में रचना की है। प्रबंध-काव्य लिखने में गुप्त जी को सर्वाधिक सफलता प्राप्त हुई है।

मैथिलीशरण गुप्त की कविता का मूल स्वर राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक है। इन्होंने प्राचीन भारत का गौरव-गान अत्यंत ओजस्वी वाणी में किया है। इनके काव्य में परिनिष्ठित खड़ीबोली का प्रयोग हुआ है। वस्तुतः उसे काव्य के उपयुक्त सिद्ध करनेवालों में मैथिलीशरण अग्रणी हैं।

गुप्त जी की प्रसिद्ध काव्य-रचनाएँ हैं—**'साकेत'**, **'यशोधरा'**, **'द्वापर'**, **'सिद्धराज'**, **'पंचवटी'**, **'जयद्रथ-वध'**, **'भारत-भारती'** आदि। भारत के राष्ट्रीय उत्थान में **'भारत-भारती'** का योगदान अमिट है।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से इन्हें **'साकेत'** पर **'मंगलाप्रसाद पारितोषिक'** प्राप्त हुआ तथा भारत सरकार ने इन्हें **'पद्मभूषण'** से अलंकृत किया है। ये बारह वर्षों तक राज्य-सभा के मनोनीत सदस्य भी रह चुके हैं।

मैथिलीशरण गुप्त

मातृभूमि

नीलांबर परिधान हरित पट पर सुंदर हैं,
सूर्य - चंद्र युग - मुकुट, मेखला रत्नाकर हैं।
नदियाँ प्रेम - प्रवाह, फूल तारे मंडन हैं,
वंदीजन खग - वृंद, शेष - फन सिंहासन हैं।

करते अभिषेक पयोद हैं, बलिहारी इस वेश की,
हे मातृभूमि! तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की॥

जिसकी रज में लोट - लोट कर बड़े हुए हैं,
घुटनों के बल सरक - सरक कर खड़े हुए हैं।
परमहंस - सम बाल्यकाल में सब सुख पाए,
जिसके कारण 'धूल भरे हीरे' कहलाए।

हम खेले - कूदे हर्षयुक्त जिसकी प्यारी गोद में,
हे मातृभूमि! तुझको निरख मग्न क्यों न हों मोद में?

पाकर तुझ से सभी सुखों को हमने भोगा,
तेरा प्रत्युपकार कभी क्या हमसे होगा?
तेरी ही यह देह, तुझी से बनी हुई है,
बस, तेरे ही सुरस - सार से सनी हुई है।

फिर अंत समय तू ही इसे अचल देख अपनाएगी,
हे मातृभूमि! यह अंत में तुझमें ही मिल जाएगी॥

निर्मल तेरा नीर अमृत के सम उत्तम है,
शीतल, मंद - सुगंध पवन हर लेता श्रम है।
षड्ऋतुओं का विविध-दृश्ययुत अद्भुत क्रम है,
हरियाली का फर्श नहीं मखमल से कम है।

शुचि सुधा सींचता रात में तुझ पर चंद्र-प्रकाश है,
हे मातृभूमि ! दिन में तरणि करता तम का नाश है ।।

('पद्य-प्रबंध' से)

पंचवटी

(यह अवतरण 'पंचवटी' काव्य से उद्धृत किया गया है। इसमें पंचवटी की प्राकृतिक शोभा और प्रहरी-रूप में सजग लक्ष्मण के मनोभावों का चित्रण हुआ है।)

(१)

चारु चंद्र की चंचल किरणें
खेल रही हैं जल-थल में,
स्वच्छ चाँदनी बिछी हुई है
अवनि और अंबरतल में।
पुलक प्रकट करती है धरती
हरित तृणों की नोकों से,
मानो झीम रहे हैं तरु भी
मंद पवन के झोकों से।।

(२)

पंचवटी की छाया में है
सुंदर पर्ण-कुटीर बना,
उसके सम्मुख स्वच्छ शिला पर
धीर वीर निर्भीकमना,
जाग रहा यह कौन धनुर्धर,
जब कि भुवन भर सोता है ?
भोगी कुसुमायुध योगी-सा
बना दृष्टिगत होता है ।।

(३)

किस व्रत में है व्रती वीर यह
निद्रा का यों त्याग किए,
राजभोग्य के योग्य विपिन में
बैठा आज विराग लिए।
बना हुआ है प्रहरी जिसका
उस कुटीर में क्या धन है,
जिसकी रक्षा में रत इसका
तन है, मन है, जीवन है!

(४)

मर्त्यलोक - मालिन्य मेटने
स्वामि-संग जो आई है,
तीन लोक की लक्ष्मी ने यह
कुटी आज अपनाई है।
वीर-वंश की लाज यही है
फिर क्यों वीर न हो प्रहरी?
विजन देश है, निशा शेष है,
निशाचरी माया ठहरी।

(५)

कोई पास न रहने पर भी
जन-मन मौन नहीं रहता,
आप आपकी सुनता है वह
आप आपसे है कहता।
बीच-बीच में इधर-उधर निज
दृष्टि डाल कर मोदमयी,
मन ही मन बातें करता है
धीर धनुर्धर नई-नई—

(६)

क्या ही स्वच्छ चाँदनी है यह,
है क्या ही निस्तब्ध निशा ;
है स्वच्छंद-सुमंद गंधवह,
निरानंद है कौन दिशा ?
बंद नहीं, अब भी चलते हैं
नियति-नटी के कार्य-कलाप,
पर कितने एकांत भाव से,
कितने शांत और चुपचाप।

(७)

है बिखेर देती वसुंधरा
मोती, सबके सोने पर,
रवि बटोर लेता है उनको
सदा सबेरा होने पर !
और विरामदायिनी अपनी
संध्या को दे जाता है,
शून्य श्याम तनु जिससे उसका
नया रूप झलकाता है।

(८)

सरल तरल जिन तुहिन कणों से
हँसती हर्षित होती है,
अति आत्मीया प्रकृति हमारे
साथ उन्हीं से रोती है।
अनजानी भूलों पर भी वह
अदय दंड तो देती है,
पर बूढ़ों को भी बच्चों-सा
सदय भाव से सेती है।

(९)

तेरह वर्ष व्यतीत हो चुके,[1]
पर है मानो कल की बात,
बन को आते देख हमें जब
आर्त, अचेत हुए थे तात।
अब वह समय निकट ही है जब
अवधि पूर्ण होगी वन की;
किन्तु प्राप्ति होगी इस जन को
इससे बढ़कर किस धन की?

(१०)

और आर्य को? राज्य-भार तो
वे प्रजार्थ ही धारेंगे,
व्यस्त रहेंगे, हम सबको भी
मानो विवश बिसारेंगे।
कर विचार लोकोपकार का
हमें न इससे होगा शोक,
पर अपना हित आप नहीं क्या
कर सकता है यह नरलोक?

('पंचवटी' से)

अयोध्या की नर-सत्ता

(गुप्त जी ने 'साकेत' में रामायण की कथा नए ढंग से लिखी है। उसमें परंपरागत कथा में कई स्थानों पर परिवर्तन कर दिया है। राम-रावण युद्ध के प्रसंग में इन्होंने अयोध्यावासियों को भी सक्रिय दिखाया है। हनुमान जब संजीवनी बूटी के लिए आकाश-मार्ग से उड़े जा रहे थे तब भरत ने राक्षस समझकर उन्हें अपने बाण से गिरा दिया। हनुमान के सचेत होने पर अयोध्यावासियों को संपूर्ण वृत्तांत का ज्ञान हुआ। भरत तुरंत लंकाप्रस्थान का निश्चय करते हैं—उन्हीं के संकेत से रात्रि में योद्धाओं को एकत्रित करने के लिए शत्रुघ्न शंख-ध्वनि करते हैं।)

करके ध्वनि-संकेत शूर ने शंख बजाया,
अंतर का आह्वान वेग से बाहर आया।

निकल उठा उच्छ्वास वक्ष से उभर-उभर के,
हुआ कंबु कृतकृत्य कंठ की अनुकृति करके।
उधर भरत ने दिया साथ ही उत्तर मानो,
एक-एक दो हुए, जिन्हें एकादश जानो।
यों ही शंख असंख्य हो गए, लगी न देरी,
घनन-घनन बज उठी गरज तत्क्षण रण-भेरी।
काँप उठा आकाश, चौंककर जगती जागी,
छिपी क्षितिज में कहीं, समय निद्रा उठ भागी।
बोले वन में मोर, नगर में डोले नागर,
करने लगे तरंग-भंग सौ-सौ स्वर-सागर।
उठी क्षुब्ध-सी अहा! अयोध्या की नर-सत्ता,
सजग हुआ साकेतपुरी का पत्ता-पत्ता।
भय-विस्मय को शूर-दर्प ने दूर भगाया,
किसने सोता हुआ यहाँ का सर्प जगाया!
अपनी चिन्ता भूल उठी माता झट लपकी,
देने लगी सँभाल बाल-बच्चों को थपकी—
"भय क्या, भय क्या हमें, राम राजा हैं अपने,
दिया भरत-सा सुफल प्रथम ही जिनके तप ने।"
चरर-मरर खुल गए अरर बहु रवस्फुटों से,
क्षणिक रुद्ध थे तदपि विकट भट उरःपुटों से।
बाँधे थे जन पाँच-पाँच आयुध मन भाए,
पंचानन गिरि-गुहा छोड़ ज्यों बाहर आए।
"धरने आया कौन आग, मणियों के धोखे?"
स्त्रियाँ देखने लगीं दीप धर, खोल झरोखे।
ऐसा जड़ है कौन, यहाँ भी जो चढ़ आए?
वह थल भी है कहाँ, जहाँ निज दल बढ़ जाए?
राम नहीं घर, यही सोचकर लोभी-मोही,
क्या कोई मांडलिक हुआ सहसा विद्रोही?
मरा अभागा, उन्हें जानता है जो वन में,
रमे हुए हैं यहाँ राम-राघव जन-जन में।

पुत्रों को नत देख धात्रियाँ बोलीं धीरा—
"जाओ बेटा,—'राम-काज, क्षण-भंग शरीरा'।"
पति से कहने लगीं पत्नियाँ—"जाओ स्वामी,
बने तुम्हारा वत्स तुम्हारा ही अनुगामी।
जाओ, अपने राम-राज्य की आन बढ़ाओ,
वीर-वंश की बान, देश का मान बढ़ाओ।"
"अंब, तुम्हारा पुत्र पैर पीछे न धरेगा,
प्रिये, तुम्हारा पति न मृत्यु से कहीं डरेगा।
फिर भी फिर भी अहो विकल-सी तुम हो रोती?"
"हम यह रोती नहीं, वारतीं मानस-मोती।"
ऐसे अगणित भाव उठे रघु-सगर-नगर में,
बगर उठे बढ़ अगर-तगर में डगर - डगर में।
चिन्तित-से काषाय-वसनधारी सब मंत्री,
आ पहुँचे तत्काल, और बहु यंत्री-तंत्री।
चंचल जल-थल-बलाध्यक्ष निज दल सजते थे,
झनझन घनघन समर-वाद्य बहुविध बजते थे।
पाल उड़ाती हुई, पंख फैलाकर नावें—
प्रस्तुत थीं, कब किधर हंसिनी-सी उड़ जावें।
हिलने डुलने लगे पंक्तियों में बँट बेड़े,
थपकी देने लगीं तरंगें मार थपेड़े।
उल्काएँ सब ओर प्रभा-सी पाट रही थीं,
पी-पीकर पुर-तिमिर जीभ-सी चाट रही थीं,
हुईं हतप्रभ नभोजड़ित हीरों की कनियाँ,
मुक्ताओं-सी बेध न लें भालों की अनियाँ।
तुले घुले-से खुले खड्ग चमचमा रहे थे,
तप्त सादियों के तुरंग तमतमा रहे थे।
हींस लगामें चाब, धरातल खूँद रहे थे,
उड़ने को उत्कर्ण कभी वे कूँद रहे थे।
करके घंटा-नाद, शस्त्र लेकर शुंडों में,
दो-दो दृढ़ रद-दंड दबाकर निज तुंडों में।

अपने मद की नहीं आप ही ऊष्मा सह कर,
झलते थे श्रुति-तालवृंत दंती रह-रहकर।
योद्धाओं का धन सुवर्ण से सार सलोना,
जहाँ हाथ में लौह वहाँ पैरों में सोना।

('साकेत' से)

प्रश्न और अभ्यास

१. अयोध्या की जनता युद्ध के लिए क्यों उद्यत हुई? उसके उत्साह का वर्णन कीजिए।

२. अधोलिखित पंक्तियों का भावार्थ स्पष्ट कीजिए :

(क) अंतर का आह्वान वेग से बाहर आया।
(ख) हुआ कंबु कृतकृत्य कंठ की अनुकृति करके।
(ग) जहाँ हाथ में लौह वहाँ पैरों में सोना।
(घ) नीलांबर परिधान········सर्वेश की।
(ङ) पुलक प्रकट करती है धरती हरित तृणों की नोकों से।
(च) चारु चंद्र की चंचल किरणें खेल रही हैं जल-थल में।

३. नीचे दिए गए रूपकों को स्पष्ट कीजिए :
नियति-नटी, रद-दंड तथा श्रुति-तालवृंत।

४. भारत की छहों ऋतुओं के नाम क्रम से बताइए।

५. निम्नलिखित पंक्तियों में प्रयुक्त मुहावरों को चुनिए और अपने वाक्यों में प्रयोग कीजिए :
(क) किसने सोता हुआ यहाँ का सर्प जगाया?
(ख) जिसके कारण 'धूल भरे हीरे' कहलाए।
(ग) सजग हुआ साकेतपुरी का पत्ता-पत्ता।

रामनरेश त्रिपाठी

रामनरेश त्रिपाठी का जन्म ज़िला जौनपुर (उत्तरप्रदेश) के कोइरीपुर नामक गाँव में सन् १८८९ ई० में हुआ था। इनकी आरंभिक शिक्षा गाँव की पाठशाला और जौनपुर के स्कूल में हुई। बाद में इन्होंने स्वतंत्र रूप से साहित्य-साधना को ही अपना ध्येय बनाया। सन् १९६२ ई० में इनका देहांत हो गया।

राजनीति से भी त्रिपाठी जी का गहरा संबंध था। अत: इनके काव्य में राष्ट्रीयता का स्वर प्रमुख रहा है। इसके अतिरिक्त इनकी कविता में प्रकृति और प्रेम का भी सुंदर चित्रण हुआ है। इनकी भाषा प्रवाहमयी, सरस और सुबोध है।

त्रिपाठी जी कवि के अतिरिक्त आलोचक, निबंधकार, नाटककार तथा बाल-साहित्यकार भी थे। लोकगीतों के संकलनकर्ता के रूप में इनकी विशेष ख्याति है। त्रिपाठी जी की काव्य-रचना दो प्रकार की है—(१) प्रबंध और (२) मुक्तक। **'पथिक'**, **'मिलन'** और **'स्वप्न'** खंड-काव्य हैं। इन तीनों का कथानक ऐतिहासिक अथवा पौराणिक न होकर सर्वथा कल्पित है। कल्पित कथा पर आश्रित खंडकाव्यकार हिन्दी में अकेले त्रिपाठी जी ही थे और इसमें इन्हें पूरी सफलता मिली। **'मानसी'** इनकी मुक्तक कविताओं का संग्रह है। संपादित ग्रंथों में **'कविता-कौमुदी'** का विशेष महत्त्व रहा है।

रामनरेश त्रिपाठी

विश्व-सुषमा

देखो प्रिये, विशाल विश्व को आँख उठा कर देखो,
अनुभव करो हृदय से यह अनुपम सुषमाकर देखो।
यह सामने अथाह प्रेम का सागर लहराता है,
कूद पड़ूं, तैरूँ इसमें, ऐसा जी में आता है॥

प्रतिक्षण नूतन वेश बनाकर रंग बिरंग निराला,
रवि के सम्मुख थिरक रही है नभ में वारिद-माला।
नीचे नील समुद्र मनोहर ऊपर नील गगन है,
घन पर बैठ बीच में बिचरूँ यही चाहता मन है॥

रत्नाकर गर्जन करता है मलयानिल बहता है,
हरदम यह हौसला हृदय में प्रिये! भरा रहता है।
इस विशाल, विस्तृत, महिमामय रत्नाकर के घर के
कोने-कोने में लहरों पर बैठ फिरूँ जी भर के॥

निकल रहा है जलनिधि-तल पर दिनकर-बिम्ब अधूरा,
कमला के कंचन-मंदिर का मानो कांत कँगूरा।
लाने को निज पुण्यभूमि पर लक्ष्मी की असवारी,
रत्नाकर ने निर्मित कर दी स्वर्ण-सड़क अति प्यारी॥

निर्भय, दृढ़, गंभीर भाव से गरज रहा सागर है,
लहरों पर लहरों का आना सुंदर, अति सुंदर है।
कहीं यहाँ से बढ़कर सुख क्या पा सकता है प्राणी!
अनुभव करो हृदय से, हे अनुराग-भरी कल्याणी!

जब गंभीर तम अर्द्धनिशा में जग को ढक लेता है,
अंतरिक्ष की छत पर तारों को छिटका देता है।
सस्मितवदन जगत का स्वामी मृदुगति से आता है,
तट पर खड़ा गगन-गंगा के मधुर गीत गाता है॥

उससे ही विमुग्ध हो नभ में चंद्र विहँस देता है,
वृक्ष विविध पत्तों पुष्पों से तन को सज लेता है।
पक्षी हर्ष सँभाल न सकते मुग्ध चहक उठते हैं,
फूल साँस लेकर सुख की सानंद महक उठते हैं।

वन, उपवन, गिरि, सानु, कुंज में मेघ बरस पड़ते हैं,
मेरा आत्म-प्रलय होता है नयन नीर झड़ते हैं।
पढ़ो लहर,तट,तृण,तरु,गिरि,नभ,किरन,जलद पर प्यारी,
लिखी हुई यह मधुर कहानी विश्व-विमोहनहारी ॥

कैसी मधुर मनोहर उज्ज्वल है यह प्रेम-कहानी,
जी में है अक्षर बन इसके बनूँ विश्व की बानी।
स्थिर, पवित्र, आनंद-प्रवाहित सदा शांत सुखकर है,
अहा! प्रेम का राज्य परम सुंदर, अतिशय सुंदर है ॥

('पथिक' से)

स्वदेश-प्रेम

अतुलनीय जिनके प्रताप का,
साक्षी है प्रत्यक्ष दिवाकर।
घूम-घूम कर देख चुका है,
जिनकी निर्मल कीर्ति निशाकर ॥
देख चुके हैं जिनका वैभव,
ये नभ के अनंत तारागण।
अगणित बार सुन चुका है नभ,
जिनका विजय-घोष रण-गर्जन ॥१॥

शोभित है सर्वोच्च मुकुट से,
जिनके दिव्य देश का मस्तक।
गूँज रही हैं सकल दिशाएँ,
जिनके जय-गीतों से अब तक ॥

जिनकी महिमा का है अविरल,
साक्षी सत्य - रूप हिमगिरिवर।
उतरा करते थे विमान-दल,
जिसके विस्तृत वक्षःस्थल पर ॥२॥

सागर निज छाती पर जिनके,
अगणित अर्णव-पोत उठाकर।
पहुँचाया करता था प्रमुदित,
भूमंडल के सकल तटों पर ॥
नदियाँ जिनकी यश-धारा-सी,
बहती हैं अब भी निशि-वासर।
ढूँढ़ो, उनके चरण-चिह्न भी,
पाओगे तुम इनके तट पर ॥३॥

विषुवत्-रेखा का वासी जो,
जीता है नित हाँफ-हाँफकर।
रखता है अनुराग अलौकिक,
वह भी अपनी मातृ-भूमि पर ॥
ध्रुव-वासी, जो हिम में तम में,
जी लेता है काँप-काँप कर।
वह भी अपनी मातृ-भूमि पर,
कर देता है प्राण निछावर ॥४॥

तुम तो, हे प्रिय बंधु, स्वर्ग-सी,
सुखद, सकल विभवों की आकर।
धरा-शिरोमणि मातृ-भूमि में,
धन्य हुए हो जीवन पाकर ॥
तुम जिसका जल-अन्न ग्रहण कर,
बड़े हुए लेकर जिसकी रज।
तन रहते कैसे तज दोगे,
उसको, हे वीरों के वंशज ॥५॥

जब तक साथ एक भी दम हो,
हो अवशिष्ट एक भी धड़कन।
रक्खो आत्म-गौरव से ऊँची
पलकें, ऊँचा सिर, ऊँचा मन ।।
एक बूंद भी रक्त शेष हो,
जब तक तन में हे शत्रुंजय।
दीन वचन मुख से न उचारो,
मानो नहीं मृत्यु का भी भय ।।६।।

निर्भय स्वागत करो मृत्यु का,
मृत्यु एक है विश्राम-स्थल।
जीव जहाँ से फिर चलता है,
धारण कर नव जीवन-संबल ।।
मृत्यु एक सरिता है, जिसमें,
श्रम से कातर जीव नहाकर।
फिर नूतन धारण करता है,
काया-रूपी वस्त्र बहाकर ।।७।।

सच्चा प्रेम वही है जिसकी
तृप्ति आत्म-बलि पर हो निर्भर।
त्याग बिना निष्प्राण प्रेम है,
करो प्रेम पर प्राण निछावर ।।
देश-प्रेम वह पुण्य-क्षेत्र है,
अमल असीम त्याग से विलसित।
आत्मा के विकास से जिसमें,
मनुष्यता होती है विकसित ।।८।।

('स्वप्न' से)

प्रश्न और अभ्यास

१. **'स्वदेश-प्रेम'** कविता में कवि ने अतीत की किन गौरवपूर्ण घटनाओं का उल्लेख किया है ?

२. **"मातृभूमि के प्रति मनुष्य में स्वाभाविक प्रेम होता है"**—इसके पक्ष में कवि ने क्या प्रमाण प्रस्तुत किए हैं ?

३. **'विश्व-सुषमा'** शीर्षक कविता में कवि ने किन प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण किया है ?

४. निम्नलिखित पंक्तियों का भावार्थ स्पष्ट कीजिए :

(क) **"आत्मा के विकास से जिसमें, मनुष्यता होती है विकसित ।"**
(ख) **"निर्भय स्वागत करो मृत्यु का ········ कायारूपी वस्त्र बहाकर ।"**
(ग) **"निकल रहा है जलनिधि तल ········ मानो कांत कँगूरा ।"**
(घ) **"मेरा आत्म प्रलय होता है नयन नीर झड़ते हैं ।"**

५. **"तट पर खड़ा गगन-गंगा के मधुर गीत गाता है"** में कौन सा शब्दालंकार है ? उसके दो और उदाहरण दीजिए ।

६. निम्नलिखित शब्दों के अर्थ स्पष्ट कीजिए :
अविरल, संबल, विलसित, सस्मित वदन ।

सुभद्राकुमारी चौहान

सुभद्राकुमारी चौहान का जन्म सन् १९०४ ई० में इलाहाबाद (उत्तरप्रदेश) के एक संपन्न परिवार में हुआ था। बचपन से ही इनको हिन्दी के काव्यग्रंथों से विशेष प्रेम था। इनका विवाह खंडवा (मध्यप्रदेश) निवासी ठा० लक्ष्मणसिंह चौहान के साथ हुआ। विवाह के साथ ही इनके जीवन-क्रम में एक नया मोड़ आ गया। महात्मा गांधी के आंदोलन का सुभद्रा जी पर गहरा प्रभाव पड़ा और ये राष्ट्र-प्रेम पर कविताएँ लिखने लगीं। सन् १९४७ ई० में एक मोटर-दुर्घटना में इनकी असामयिक मृत्यु हो गई।

सुभद्राकुमारी चौहान की काव्य-साधना के पीछे उत्कट देश-प्रेम, साहस और बलिदान की भावना है। देश को स्वतंत्र करने के लिए जेल-जीवन की यातनाएँ सहने में इन्हें जितना सुख मिलता था उतना ही उन सात्विक अनुभूतियों को कविता द्वारा व्यक्त करने में भी प्राप्त होता था।

श्रीमती चौहान की भाषा सीधी-सादी, सरल और स्वाभाविक है। इन्होंने अपने काव्य में पारिवारिक जीवन के मोहक चित्र अंकित किए हैं, जिनमें वात्सल्य की मधुर व्यंजना हुई है। इनके काव्य में नारी-सुलभ ममता और सुकुमारता है तथा साथ ही वीरांगना का शौर्य एवं ओज भी है। अलंकारों या कल्पित प्रतीकों के मोह में न पड़कर अनुभूति को स्वच्छ और स्पष्ट रूप से प्रकट करने में ही इनकी कला की सफलता है।

'मुकुल' इनका प्रसिद्ध काव्य-संग्रह है। **'सीधे-सादे चित्र', 'बिखरे मोती'** और **'उन्मादिनी'** इनकी कहानियों के संकलन हैं।

सुभद्राकुमारी चौहान

झाँसी की रानी की समाधि पर

इस समाधि में छिपी हुई है,
एक राख की ढेरी।
जल कर जिसने स्वतंत्रता की,
दिव्य आरती फेरी ॥

यह समाधि, यह लघु समाधि है,
झाँसी की रानी की।
अंतिम लीलास्थली यही है,
लक्ष्मी मरदानी की ॥

यहीं कहीं पर बिखर गई वह,
भग्न विजय - माला - सी।
उसके फूल यहाँ संचित हैं,
है यह स्मृति - शाला - सी ॥

सहे वार पर वार अंत तक,
लड़ी वीर बाला-सी।
आहुति-सी गिर चढ़ी चिता पर,
चमक उठी ज्वाला-सी ॥

बढ़ जाता है मान वीर का,
रण में बलि होने से।
मूल्यवती होती सोने की,
भस्म यथा सोने से ॥

रानी से भी अधिक हमें अब,
यह समाधि है प्यारी।
यहाँ निहित है स्वतंत्रता की,
आशा की चिनगारी ॥

इससे भी सुंदर समाधियाँ,
हम जग में हैं पाते।
उनकी गाथा पर निशीथ में,
क्षुद्र जंतु ही गाते ॥

पर कवियों की अमर गिरा में,
इसकी अमिट कहानी।
स्नेह और श्रद्धा से गाती
है वीरों की बानी ॥

बुंदेले हरबोलों के मुख,
हमने सुनी कहानी।
खूब लड़ी मरदानी वह थी,
झाँसी वाली रानी ॥

यह समाधि यह चिर समाधि,
है झाँसी की रानी की।
अंतिम लीलास्थली यही है,
लक्ष्मी मरदानी की ॥

('त्रिधारा' से)

कदंब का पेड़

यह कदंब का पेड़ अगर माँ, होता यमुना तीरे,
मैं भी उस पर बैठ कन्हैया बनता धीरे-धीरे।
ले देतीं यदि मुझे बाँसुरी तुम दो पैसे वाली,
किसी तरह नीचे हो जाती यह कदंब की डाली।

तुम्हें नहीं कुछ कहता, पर मैं चुपके-चुपके आता,
उस नीची डाली से अम्माँ ऊँचे पर चढ़ जाता।
वहीं बैठ फिर बड़े मजे से मैं बाँसुरी बजाता,
'अम्माँ-अम्माँ' कह वंशी के स्वर में तुम्हें बुलाता।

सुन मेरी बंशी को माँ तुम इतनी खुश हो जातीं ,
मुझे देखने काम छोड़कर तुम बाहर तक आतीं ।
तुमको आता देख बाँसुरी रख मैं चुप हो जाता ,
पत्तों में छिपकर मैं धीरे से फिर बाँसुरी बजाता ।

तुम हो चकित देखतीं चारों ओर न मुझको पातीं ,
तब व्याकुल-सी हो कदंब के नीचे तक आ जातीं ।
पत्तों का मर्मर स्वर सुन जब ऊपर आँख उठातीं ,
मुझको ऊपर चढ़ा देखकर कितनी घबरा जातीं ।

गुस्सा होकर मुझे डाँटतीं, कहतीं नीचे आ जा ,
पर जब मैं न उतरता हँसकर कहतीं—"मुन्ना राजा ,
नीचे उतरो मेरे भैया ! तुम्हें मिठाई दूँगी ,
नए खिलौने माखन-मिश्री दूध मलाई दूँगी ।"

मैं हँसकर सबसे ऊपर की टहनी पर चढ़ जाता ,
एक बार 'माँ' कह पत्तों में वहीं कहीं छिप जाता ।
बहुत बुलाने पर भी माँ, जब मैं न उतरकर आता ,
तब माँ, माँ का हृदय तुम्हारा बहुत विकल हो जाता ।

तुम अंचल पसार कर अम्माँ, वहीं पेड़ के नीचे ,
ईश्वर से कुछ विनती करतीं बैठी आँखें मीचे ।
तुम्हें ध्यान में लगी देख, मैं धीरे-धीरे आता ,
और तुम्हारे फैले अंचल के नीचे छिप जाता ।

बालिका का परिचय

यह मेरी गोदी की शोभा
सुख सुहाग की है लाली ।
शाही शान भिखारिन की है
मनोकामना मतवाली ॥

दीप-शिखा है अंधकार की
बनी घटा की उजियाली।
ऊषा है यह कमल - भृंग की
है पतझड़ की हरियाली ॥

सुधा-धार यह नीरस दिल की
मस्ती मगन तपस्वी की।
जीवन ज्योति नष्ट नयनों की
सच्ची लगन मनस्वी की ॥

बीते हुए बालपन की यह
क्रीड़ापूर्ण वाटिका है।
वही मचलना, वही किलकना
हँसती हुई नाटिका है ॥

मेरा मंदिर, मेरी मसजिद
काबा-काशी यह मेरी।
पूजा-पाठ, ध्यान-जप-तप है
घट-घट-वासी यह मेरी ॥

कृष्णचंद्र की क्रीड़ाओं को
अपने आँगन में देखो।
कौशल्या के मातृमोद को
अपने ही मन में लेखो ॥

प्रभु ईसा की क्षमाशीलता
नबी मुहम्मद का विश्वास।
जीव दया जिनवर गौतम की
आओ देखो इसके पास ॥

परिचय पूछ रहे हो मुझसे,
कैसे परिचय दूँ इसका ।
वही जान सकता है इसको,
माता का दिल है जिसका ।।

('मुकुल' से)

स्वदेश के प्रति

आ, स्वतंत्र प्यारे स्वदेश आ,
स्वागत करती हूँ तेरा,
तुझे देखकर आज हो रहा
दूना प्रमुदित मन मेरा ।।

आ, उस बालक के समान
जो है गुरुता का अधिकारी,
आ, उस युवक-वीर-सा जिसको
विपदाएँ ही हैं प्यारी ।।

आ, उस सेवक के समान तू
विनयशील अनुगामी-सा,
अथवा आ तू युद्धक्षेत्र में
कीर्ति-ध्वजा का स्वामी-सा ।।

आशा की सूखी लतिकाएँ
तुझको पा, फिर लहराईं,
अत्याचारी की कृतियों को
निर्भयता से दरसाईं ।।

('मुकुल' से)

प्रश्न और अभ्यास

१. बालिका का कवयित्री ने किन रूपों में चित्रण किया है ?

२. "श्रीमती चौहान की कविता में उत्साह और उमंग का वर्णन है।"—पठित कविताओं में इन भावों के उदाहरण ढूँढ़िए।

३. 'कदंब का पेड़' कविता में बालक की जिन आकांक्षाओं का वर्णन हुआ है, उन्हें अपने शब्दों में लिखिए।

४. झाँसी की रानी के लिए कवयित्री ने किन विशेषणों का प्रयोग किया है और वे कहाँ तक सार्थक हैं ?

५. निम्नांकित उक्तियों का आशय स्पष्ट कीजिए :

(क) 'अंधकार की दीपशिखा।'
(ख) 'नष्ट नयनों की जीवन ज्योति।'
(ग) 'प्रभु ईसा की क्षमाशीलता........आओ देखो इसके पास।'
(घ) 'जलकर जिसने स्वतंत्रता की दिव्य आरती फेरी।'
(ङ) 'मूल्यवती होती सोने की भस्म यथा सोने से।'

६. कविता को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए कवि विरोधी शब्दों का प्रयोग एक स्थान पर करता है, जैसे लाभ-हानि, जीवन-मरण, यश-अपयश। निम्नांकित शब्दों के विरोधार्थी शब्द अथवा विलोम लिखिए :

नीरस, विपदा, आशा, स्वतंत्र, विजय, कीर्ति, गुरुता।

—

सोहनलाल द्विवेदी

सोहनलाल द्विवेदी का जन्म सन् १९०५ ई० में बिंदकी, जिला फतेहपुर (उत्तरप्रदेश) में हुआ था। इन्होंने हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी से एम० ए० तथा एल-एल० बी० की परीक्षाएँ पास कीं। प्रारंभ में इन्होंने कुछ समय तक हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं का संपादन किया। आजकल ये अपने गाँव में ही रहकर साहित्य और समाज की सेवा कर रहे हैं।

द्विवेदी जी राष्ट्रीयता के प्रबल पोषक और गांधीवादी विचारधारा के समर्थक हैं। अहिंसा, प्रेम, समता और शांति इनकी कविता के मुख्य विषय हैं। भारत के प्राचीन गौरव की कथाओं को आधुनिक युग के अनुरूप ढालकर इन्होंने रोचक शैली में अंकित किया है। बालोपयोगी कविता लिखने में तो ये सिद्धहस्त हैं। द्विवेदी जी की भाषा परिष्कृत खड़ीबोली है। स्निग्ध भावों की अभिव्यक्ति में इनकी भाषा सरस और राष्ट्र-प्रेम को प्रकट करते समय ओजगुण-प्रधान हो जाती है।

'भैरवी', **'पूजागीत'** तथा **'सेवाग्राम'** सोहनलाल द्विवेदी के राष्ट्रीय गीतों के संग्रह हैं; **'कुणाल'**, **'वासवदत्ता'** और **'विषपान'** आख्यान-काव्य हैं और **'दूधबतासा'** तथा **'बालभारती'** बालोपयोगी रचनाएँ हैं।

सोहनलाल द्विवेदी

पूजा-गीत

वंदना के इन स्वरों में, एक स्वर मेरा मिला लो।
तब कभी माँ को न भूलो,
राग में जब मत्त झूलो;
अर्चना के रत्नकण में एक कण मेरा मिला लो।
जब हृदय का तार बोले,
शृंखला के बंध खोले;
हों जहाँ बलि शीश अगणित, एक शिर मेरा मिला लो।

('भैरवी' से)

राणा प्रताप के प्रति

कल हुआ तुम्हारा राजतिलक
बन गए आज ही वैरागी?
उत्फुल्ल मधु-मदिर सरसिज में
यह कैसी तरुण अरुण आगी?

क्या कहा, कि—
'तब तक तुम न कभी,
वैभव सिंचित शृंगार करो'
क्या कहा, कि—
'जब तक तुम न विगत—
गौरव स्वदेश उद्धार करो।'

माणिक मणिमय सिंहासन को
कंकड़ पत्थर के कोनों पर,
सोने-चाँदी के पात्रों को
पत्तों के पीले दोनों पर,

वैभव से विह्वल महलों का
काँटों की कटु झोंपड़ियों पर,
मधु से मतवाली बेलाएँ
भूखी बिलखाती घड़ियों पर,

रानी कुमार-सी निधियों को
माँ की आँसू की लड़ियों पर,
तुमने अपने को लुटा दिया
आज़ादी की फुलझड़ियों पर !

निर्वासन के निष्ठुर प्रण में
धुँधुवाती रक्त-चिता रण में,
बाणों के भीषण वर्षण में
फौहारे-से बहते व्रण में,

बेटे की भूखी आहों में
बेटी की प्यासी दाहों में,
तुमने आज़ादी को देखा
मरने की मीठी चाहों में !

किस अमर शक्ति आराधन में
किस मुक्ति युक्ति के साधन में,
मेरे वैरागी वीर व्यग्र
किस तपबल के उत्पादन में ?

हम कसे कवच, सज अस्त्र-शस्त्र
व्याकुल हैं रण में जाने को,
मेरे सेनापति ! कहाँ छिपे ?
तुम आओ शंख बजाने को,

जागो ! प्रताप, मेवाड़ देश के
लक्ष्यभेद हैं जगा रहे,
जागो ! प्रताप, माँ - बहनों के
अपमान-छेद हैं जगा रहे,

जागो प्रताप, मदवालों के
मतवाले सेना सजा रहे,
जागो प्रताप, हल्दीघाटी में
वैरी भेरी बजा रहे !

मेरे प्रताप, तुम फूट पड़ो
मेरे आँसू की धारों से
मेरे प्रताप, तुम गूँज उठो
मेरी संतप्त पुकारों से,

मेरे प्रताप, तुम बिखर पड़ो
मेरे उत्पीड़न भारों से,
मेरे प्रताप, तुम निखर पड़ो
मेरे बलि के उपहारों से ।

('भैरवी' से)

प्रश्न और अभ्यास

१. **'पूजा-गीत'** में कवि ने क्या अभिलाषा प्रकट की है ?
२. महाराणा की क्या प्रतिज्ञा थी और उन्होंने उसका किस प्रकार निर्वाह किया ?
३. **'राणा प्रताप के प्रति'** शीर्षक कविता का मुख्य संदेश अपने शब्दों में लिखिए ।
४. भावार्थ स्पष्ट कीजिए :
   (क) **अर्चना के रत्नकण में एक कण मेरा मिला लो ।**
   (ख) **उत्फुल्ल मधु-मदिर सरसिज में यह कैसी तरुण अरुण आगी ।**
   (ग) **तुमने आज़ादी को देखा मरने की मीठी चाहों में ।**
५. निम्नलिखित शब्दों के अर्थ लिखिए तथा वाक्यों में उनका प्रयोग कीजिए :
   शृंखला, अगणित, निर्वासन, उत्पीड़न ।

रामधारीसिंह दिनकर

दिनकर की कविता का मूल स्वर है क्रांति। ओजपूर्ण शैली में राष्ट्रीय भावनाओं की अभिव्यक्ति इनकी विशेषता है। इनका जन्म सन् १९०८ ई० में बिहार प्रांत के मुंगेर जिले के सिमरिया ग्राम में हुआ था। बी० ए० (ऑनर्स) परीक्षा पास करने के बाद कुछ समय तक इन्होंने सब-रजिस्ट्रार और उपनिदेशक, प्रचार-विभाग के पदों पर कार्य किया और बाद में मुज़फ्फरपुर कालेज में हिन्दी के प्राध्यापक नियुक्त हुए। सन् १९५२ ई० में ये भारतीय संसद् के सदस्य निर्वाचित हुए। इस समय ये भागलपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति हैं।

जन-मानस में नवीन चेतना उत्पन्न करना दिनकर की कविता का प्रमुख लक्ष्य रहा है। इनकी कविता प्रगति और निर्माण के पथ पर अग्रसर होने का संदेश देती है। छायावादी युग की प्रेम और शृंगारमयी कविता को इन्होंने ओज और शौर्य के प्रखर स्वर में बदलकर काव्य-विषयों और काव्य-शैली में नूतनता लाने का सफल प्रयास किया है। वीर और रौद्र रस के साथ-साथ दिनकर ने प्रेम और सौन्दर्य की व्यंजना करनेवाले सरस गीत भी लिखे हैं जिनमें हृदय की कोमलता और स्निग्धता स्पष्ट दिखाई देती है। इनकी भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ कहीं-कहीं फ़ारसी और अरबी के प्रचलित शब्दों का प्रयोग भी मिलता है।

'रेणुका', **'द्वंद्वगीत'**, **'हुंकार'**, **'रसवंती'**, **'धूप-छाँह'**, **'कुरुक्षेत्र'**, **'रश्मिरथी'**, **'सामधनी'**, **'नील कुसुम'**, **'सीपी और शंख'**, **'उर्वशी'**, तथा **'परशुराम की प्रतीक्षा'** दिनकर की प्रमुख काव्य-कृतियाँ हैं। कविता के अतिरिक्त इन्होंने उच्च कोटि के गद्य-साहित्य की भी रचना की है। **'संस्कृति के चार अध्याय'** तथा **'अर्धनारीश्वर'** में इनका प्रौढ गद्य मिलता है।
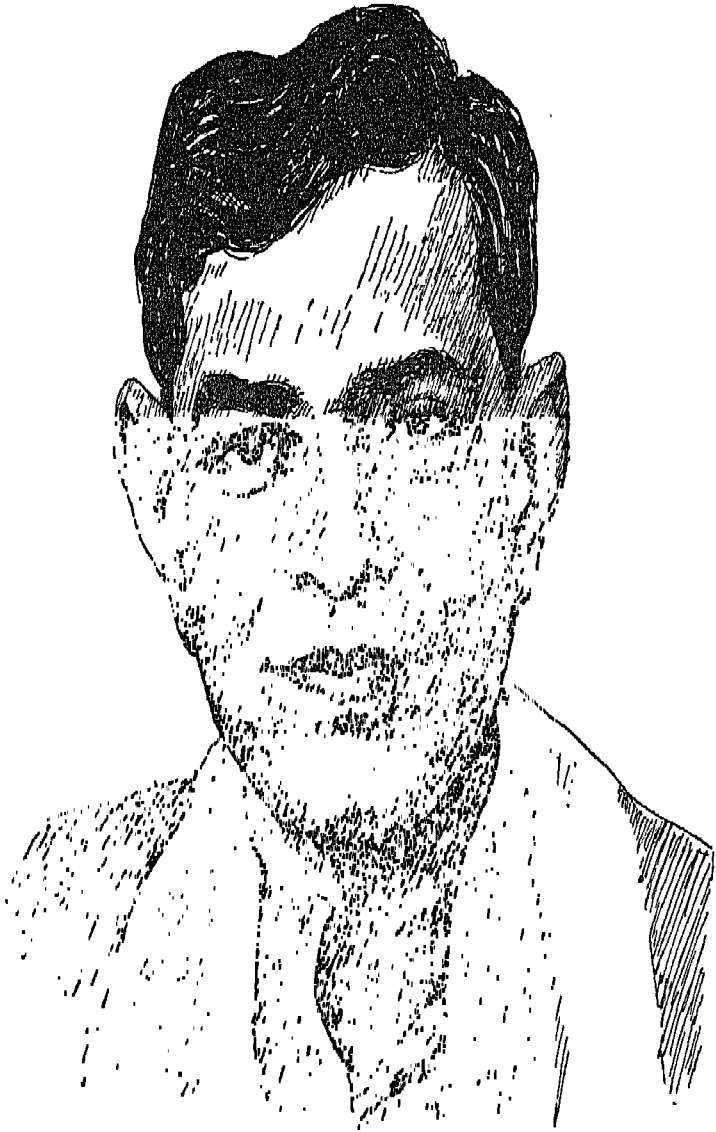
रामधारीसिंह दिनकर

किसको नमन करूँ मैं ?

तुझको या तेरे नदीश, गिरि, वन को नमन करूँ मैं ?
मेरे प्यारे देश ! देह या मन को नमन करूँ मैं ?

किसको नमन करूँ मैं भारत ! किसको नमन करूँ मैं ?

भू के मानचित्र पर अंकित त्रिभुज, यही क्या तू है ?
नर के नभश्चरण की दृढ़ कल्पना नहीं क्या तू है ?
(1) भेदों का ज्ञाता, निगूढ़ताओं का चिर ज्ञानी है ;
मेरे प्यारे देश ! नहीं तू पत्थर है, पानी है।

जड़ताओं में छिपे किसी चेतन को नमन करूँ मैं ?
किसको नमन करूँ मैं भारत! किसको नमन करूँ मैं ?

भारत नहीं स्थान का वाचक, गुण विशेष नर का है ,
एक देश का नहीं, शील यह भूमंडल भर का है।
जहाँ कहीं एकता अखंडित, जहाँ प्रेम का स्वर है ;
देश-देश में वहाँ खड़ा भारत जीवित भास्वर है।

निखिल विश्व को जन्मभूमि-वंदन को नमन करूँ मैं।
किसको नमन करूँ मैं भारत! किसको नमन करूँ मैं ?

खंडित है यह मही शैल से, सरिता से, सागर से;
पर, जब भी दो हाथ निकल मिलते आ द्वीपांतर से;
तब खाई को पाट शून्य में महा मोद मचता है;
दो द्वीपों के बीच सेतु यह भारत ही रचता है।

मंगलमय इस महासेतु-बंधन को नमन करूँ मैं।
किसको नमन करूँ मैं भारत! किसको नमन करूँ मैं ?

दो हृदय के तार जहाँ भी जो जन जोड़ रहे हैं ,
मित्र-भाव की ओर विश्व की गति को मोड़ रहे हैं।

घोल रहे हैं जो जीवन-सरिता में प्रेम-रसायन,
खोल रहे हैं देश-देश के बीच मुँदे वातायन!

आत्मबंधु कहकर ऐसे जन-जन को नमन करूँ मैं!
किसको नमन करूँ मैं भारत! किसको नमन करूँ मैं?

उठे जहाँ भी घोष शांति का, भारत, स्वर तेरा है
धर्म-दीप हो जिसके भी कर में वह नर तेरा है
तेरा है वह वीर, सत्य पर जो अड़ने जाता है,
किसी न्याय के लिए प्राण अर्पित करने जाता है।

मानवता के इस ललाट-चंदन को नमन करूँ मैं।
किसको नमन करूँ मैं भारत! किसको नमन करूँ मैं?

('नीलकुसुम' से)

हिमालय

मेरे नगपति! मेरे विशाल!

साकार, दिव्य, गौरव विराट,
पौरुष के पुंजीभूत ज्वाल!
मेरी जननी के हिम-किरीट!
मेरे भारत के दिव्य भाल!

मेरे नगपति! मेरे विशाल!

युग-युग अजेय, निर्बन्ध, मुक्त,
युग-युग शुचि, गर्वोन्नत, महान,
निस्सीम व्योम में तान रहा
युग से किस महिमा का वितान?

कैसी अखंड यह चिर समाधि?
यतिवर! कैसा यह अमिट ध्यान?

तू महाशून्य में खोज रहा
किस जटिल समस्या का निदान ?
उलझन का कैसा विषम जाल ?

मेरे नगपति ! मेरे विशाल !

ओ, मौन तपस्या-लीन यती !
पल भर को तो कर दृगुन्मेष !
रे ज्वालाओं से दग्ध, विकल
है तड़प रहा पद पर स्वदेश ।
सुखसिन्धु, पंचनद, ब्रह्मपुत्र
गंगा, यमुना की अमिय-धार
जिस पुण्यभूमि की ओर बही
तेरी विगलित करुणा उदार,

जिसके द्वारों पर खड़ा क्रांत
सीमापति ! तूने की पुकार,
'पद-दलित इसे करना पीछे
पहले ले मेरा सिर उतार ।
उस पुण्यभूमि पर आज तपी
रे, आन पड़ा संकट कराल,
व्याकुल तेरे सुत तड़प रहे,
डँस रहे चतुर्दिक् विविध व्याल ।

मेरे नगपति ! मेरे विशाल !

कितनी मणियाँ लुट गईं ? मिटा
कितना मेरा वैभव अशेष !
तू ध्यान-मग्न ही रहा, इधर
वीरान हुआ प्यारा स्वदेश ।

किन द्रौपदियों के बाल खुले ?
किन-किन कलियों का अंत हुआ ?
कह हृदय खोल चित्तौड़ ! यहाँ
कितने दिन ज्वाल-वसंत हुआ ?

पूछ सिकता-कण से हिमपति !
तेरा वह राजस्थान कहाँ ?
वन-वन स्वतंत्रता-दीप लिए
फिरनेवाला बलवान कहाँ ?

तू पूछ अवध से, राम कहाँ ?
वृंदा ! बोलो, घनश्याम कहाँ ?
ओ मगध, कहाँ मेरे अशोक ?
वह चंद्रगुप्त बलधाम कहाँ ?

पैरों पर ही है पड़ी हुई
मिथिला भिखारिणी सुकुमारी,
तू पूछ कहाँ इसने खोईं
अपनी अनंत निधियाँ सारी ?

री कपिलवस्तु ! कह, बुद्धदेव
के वे मंगल उपदेश कहाँ ?
तिब्बत, इरान, जापान, चीन
तक गए हुए संदेश कहाँ ?

वैशाली के भग्नावशेष से
पूछ लिच्छवी शान कहाँ ?
ओ री उदास गंडकी ! बता
विद्यापति कवि के गान कहाँ ?

तू तरुण देश से पूछ अरे,
गूँजा यह कैसा ध्वंस-राग ?
अंबुधि-अंतस्तल-बीच छिपी
यह सुलग रही है कौन आग ?

प्राची के प्रांगण-बीच देख,
जल रहा स्वर्ण-युग-अग्नि-ज्वाल,
तू सिंहनाद कर जाग तपी !
मेरे नगपति ! मेरे विशाल

रे, रोक युधिष्ठिर को न यहाँ,
जाने दे उनको स्वर्ग धीर,
पर, फिरा हमें गांडीव-गदा,
लौटा दे अर्जुन-भीम वीर।

कह दे शंकर से, आज करें
वे प्रलय-नृत्य फिर एक बार।
सारे भारत में गूँज उठे,
'हर-हर-बम' का फिर महोच्चार।

ले अँगड़ाई, उठ हिले धरा,
कर निज विराट स्वर में निनाद,
तू शैलराट ! हुंकार भरे,
फट जाय कुहा, भागे प्रमाद।

तू मौन त्याग, कर सिंहनाद,
रे तपी ! आज तप का न काल।
नव-युग-शंखध्वनि जगा रही,
तू जाग, जाग, मेरे विशाल !

('चक्रवाल' से)

प्रश्न और अभ्यास

१. कवि ने भारत की अनेक विशेषताएँ बताई हैं। उनमें से एक यह है कि हमारा देश 'भू-मंडल का शील' है--ऐसी अन्य विशेषताएँ चुनिए।

२. निम्नलिखित अंशों के भावों की व्याख्या कीजिए :

(क) नर के नभश्चरण की दृढ़ कल्पना।
(ख) मानवता का ललाट-चंदन।
(ग) साकार, दिव्य, गौरव विराट, पौरुष के पुंजीभूत ज्वाल।
(घ) खोल रहे हैं देश-देश के बीच मुँदे वातायन।

३. 'हिमालय' शीर्षक कविता में कवि ने किन महापुरुषों का उल्लेख किया है?

४. गौतम बुद्ध के क्या उपदेश थे और किन-किन देशों में उनका प्रचार हुआ?

५. 'हिमालय' कविता में वर्णित ऐतिहासिक स्थानों का महत्व बताइए।

६. 'जीवन-सरिता', 'प्रेम-रसायन' के रूपक स्पष्ट कीजिए।

७. हिमालय के लिए प्रयुक्त निम्नलिखित विशेषणों को स्पष्ट कीजिए :
शैलराट, हिमकिरीट, यती, तपी, सीमापति।

टिप्पणियाँ

कबीरदास

साखी	—प्रत्यक्ष देख हुए सत्य को प्रकट करनेवाली उक्ति ।
कुंडलि	—नाभि ।
नींपजै	—उत्पन्न होता है ।

नरोत्तमदास

संदीपनि	—सांदीपनि, श्रीकृष्ण और सुदामा के बाल्यावस्था के गुरु।
लढ़ा	—बैलगाड़ी ।
छरिया	—द्वारपाल ।
बूट	—हरा चना ।
उपानह की नहिं सामा	—जूतों का कोई डौल अर्थात् ढंग नहीं ।
धन	—स्त्री ।
सकेलि	—बटोर कर ।
छूछी	—बिना आभूषण के ।

तुलसीदास

बालपतंग	—प्रातःकालीन सूर्य ।
चाहि	—बढ़कर।
कनहारू	—पार उतारनेवाला ।
शतानंद	—शतानंद (राजा जनक के पुरोहित) ।
पोच	—बुरी बात ।

रहीम

अमरबेलि	—अमरबेल, एक बेल जो पेड़ों पर फैलती है । इसकी जड़ जमीन में नहीं होती। यह पेड़ से ही अपना प्राण-रस खींचती है।
छोह	—प्रेम ।

रसखान

कलधौत	—सोना ।

मैथिलीशरण गुप्त

तरणि	—सूर्य ।
गंधवह	—वायु ।
तुहिन-कण	—ओस की बूँदें ।
अरर	—दरवाज़ा
पंचानन	—शेर, शिव ।
मांडलिक	—राजा ।
रघु-सगर-नगर	—सूर्यवंशी राजा रघु तथा सगर आदि का नगर अर्थात् अयोध्या ।
अगर-तगर	—सुगंधित पेड़ (यहाँ इनकी लकड़ियों के धुएँ के समान)
श्रुति-तालवृंत	—कान-रूपी (ताड़ का) पंखा ।

रामनरेश त्रिपाठी

विषुवत्-रेखा	—भूमध्य-रेखा ।
विभवों की आकर	—नाना प्रकार के सुखों की खान ।

सुभद्राकुमारी चौहान

कमल-भृंग	—कमल में बंद हुआ भौंरा ।

रामधारीसिंह दिनकर

भास्वर	—दीप्तिमान ।
दृगुन्मेष	—आँख खुलना ।
लिच्छवी-शान	—लिच्छवी गणतंत्र की शान ।

—

अंतःकथाएँ

सुदामा

कृष्ण के सखा। जिस समय सुदामा सांदीपनि गुरु के आश्रम में कृष्ण के साथ पढ़ रहे थे तब एक बार गुरु-पत्नी ने कृष्ण और सुदामा दोनों के लिए चने दिए थे जिन्हें कृष्ण से छिपा कर सुदामा स्वयं खा गए थे। कृष्ण ने सुदामा के द्वारका आने पर इस बात का संकेत किया था और सुदामा की पत्नी के द्वारा भेजे गए चावलों को सुदामा से छीनकर खा लिया था।

गीध

जटायु (गृद्धराज)। एक गृद्ध पक्षी जो राम का भक्त कहा जाता है। इसका नाम जटायु था। यह अरुण का पुत्र, गरुड़ का भतीजा और संपाती का भाई था। दशरथ से इसकी मित्रता थी। जिस समय रावण सीता का हरण कर ले जा रहा था, जटायु ने उसे रोका और वीरतापूर्वक युद्ध किया। रावण ने पंख काटकर इसे घायल कर दिया और सीता को ले गया। सीता को ढूँढ़ते हुए राम जब इसके पास पहुँचे तो इसने सारी कथा कह सुनाई और सुनाते ही इसके प्राण निकल गए। राम ने जटायु की अंत्येष्टि अपने हाथ से संपन्न की।

सबरी

शबरी। मतंग मुनि के आश्रम में निवास करनेवाली एक भगवद्भक्त भीलनी। इसके विषय में प्रसिद्ध है कि मतंग मुनि के मरते समय इसने भी साथ चलने की इच्छा प्रकट की थी किन्तु उन्होंने इसे राम के दर्शन करने तक आश्रम में रहने का आदेश दिया। शबरी राम के आगमन की बड़ी निष्ठापूर्वक प्रतीक्षा करती रही और उनके स्वागत-सत्कार के लिए जंगल से फल-फूल एकत्र करके रखती रही। वनवास के समय राम के पंपासर आने पर शबरी ने अपने मीठे बेर के फल राम को खाने के लिए दिए। राम ने प्रेमपूर्वक शबरी का आतिथ्य स्वीकार किया। शबरी ने राम की अनुमति से उनके समक्ष प्राण विसर्जन किए और स्वर्गलोक को चली गई।

रावण

लंकाधिपति। रावण विश्रवा मुनि का पुत्र था, इसकी माता का नाम कैकसी था। कहा जाता है कि रावण के जन्म से ही दस सिर थे। उसने संसार का सबसे वैभवशाली व्यक्ति बनने के लिए घोर तप किया। शिव को प्रसन्न करने के लिए उसने अपने दस सिरों को काट कर अर्पित किया, जिसके फलस्वरूप शिव ने प्रसन्न होकर उससे वर माँगने को कहा। रावण ने दो वर प्राप्त किए। पहला यह कि दानव, यक्ष और देवों में से कोई भी मुझे मार न सके और दूसरा वर यह

कि मैं अपनी इच्छा से कोई भी रूप धारण कर सकूँ। 'दस सीस अरप करि' पंक्ति में रावण की इस तपस्या का संकेत है।

प्रह्लाद

विष्णु का एक प्रसिद्ध भक्त जो हिरण्यकशिपु का पुत्र था। हिरण्यकशिपु इसे विष्णुभक्ति से विमुख करना चाहता था। उसने नाना प्रकार के कष्ट देकर इसे मारना चाहा, किन्तु वह इसे मार न सका। भगवान विष्णु की कृपा से यह सदा अक्षत ही बना रहा। अंत में हिरण्यकशिपु का वध करने और प्रह्लाद को बचाने के लिए विष्णु ने नृसिंहावतार धारण किया। विष्णुभक्ति के लिए प्रह्लाद ने अपने पिता को छोड़ दिया था।

बलि

दैत्य जाति का प्रसिद्ध दानी राजा जो विरोचन का पुत्र था। दानशीलता के कारण यह स्वयं को भी बलि कर बैठा था, अतः बलि नाम से विख्यात हो गया था। देवता बलि के त्याग और दान-भावना को देखकर चिन्तित हो उठे थे। उन्होंने विष्णु भगवान से प्रार्थना की कि वे राजा बलि की इस दानशीलता को भंग करें। फलतः विष्णु ने वामन का रूप धारण किया और बलि के पास गए। बलि के पूछने पर इन्होंने तीन पग भूमि की याचना की। बलि ने आग्रह किया कि वे कुछ और माँगें, किन्तु जब उन्होंने तीन पग भूमि का हठ किया तो बलि देने को उद्यत हो गए। दान का संकल्प पढ़ने से पहले ही बलि के गुरु शुक्राचार्य समझ गए कि वामन के रूप में विष्णु भगवान स्वयं छल कर रहे हैं; अतः उन्होंने बलि से कहा कि वह दान-संकल्प न पढ़ें, किन्तु बलि ने गुरु की बात न मानकर दान देना स्वीकार कर लिया। जब भूमि देने का प्रश्न आया तो वामन ने अपना विराट रूप धारण कर लिया और दो पग में सारी पृथ्वी नाप ली। यह देख तीसरे पग के लिए बलि ने अपना शरीर अर्पित कर दिया।

पुरंदर धारन

प्रसिद्ध है कि कृष्ण से पहले ब्रज के लोग इंद्र देवता की पूजा करते थे। कृष्ण ने इंद्र-पूजा के स्थान पर ब्रज में गोवर्धन पर्वत की पूजा प्रचलित की। इंद्र देवता ब्रजवासियों के इस कार्य से बहुत अप्रसन्न हुए और उन्होंने मूसलाधार वर्षा द्वारा समस्त ब्रज को जलमग्न कर दिया। ब्रजवासी हाहाकार करते हुए कृष्ण के पास गए। कृष्ण ने इंद्र के कोप का रहस्य समझ लिया और ब्रजवासियों को गोवर्धन पर्वत के नीचे इकट्ठा कर गोवर्धन को अपनी अँगुली पर छाते के समान उठा लिया। ब्रजवासी वर्षा से बच गए। इंद्र अपने मन में लज्जित होकर कृष्ण के पास आए और उन्होंने क्षमा-याचना की। यह घटना इंद्र-कोप या गोवर्धन-लीला के नाम से भी प्रसिद्ध है।

—

काव्य-संकलन

– द्वितीय भाग –

(दसवीं-ग्यारहवीं कक्षाओं के लिए)

काव्य-संकलन

(द्वितीय भाग)

काव्य-संकलन का यह भाग उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों की दसवीं-ग्यारहवीं कक्षाओं के लिए तैयार किया गया है। इन कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए अपनी भाषा के प्राचीन तथा अर्वाचीन प्रमुख कवियों से परिचित होना आवश्यक है। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर संकलन में प्राचीन कवियों को भी महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। जायसी, सूर, मीरा, केशव, बिहारी तथा भूषण अपने-अपने युग की विशेष विचारधारा तथा जीवन-दर्शन का प्रतिनिधित्व करते हैं। यह सत्य है कि आधुनिक साहित्य की चिन्ताधारा तथा अभिव्यंजना-शैली इन कवियों की अनुभूति तथा अभिव्यक्ति से भिन्न है, तथापि जातीय चेतना के विकास को समझने के लिए इन कवियों के महत्त्व की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

युगप्रवर्तक कवि के रूप में भारतेन्दु का महत्त्व सर्व-विदित है। थोड़े से प्रयास से ही छात्र यह समझ लेंगे कि उनकी कविता में किस प्रकार नए विचारों तथा नई भाषा का साथ-साथ जन्म हो रहा है। रत्नाकर में ब्रजभाषा युग की अंतिम आभा तथा हरिऔध में खड़ीबोली युग का प्रारंभिक प्रकाश स्पष्ट दृष्टिगोचर होगा। माखनलाल चतुर्वेदी अपनी अभिव्यंजना की नवीनता तथा सियारामशरण गुप्त अपनी भाषा एवं भावों की सरलता से छात्रों को आधुनिक हिन्दी कविता के विकास-क्रम से अवगत करा सकेंगे।

संग्रह के अंतिम चार कवि—प्रसाद, निराला, पंत तथा महादेवी—छायावाद के गौरव-स्तंभ हैं। इनके काव्य में आधुनिक हिन्दी कविता की अनुभूति तथा अभिव्यक्ति की चरम परिणति उपलब्ध होती है। इन कवियों की कुछ रचनाओं को समझने में छात्रों को प्रारंभ में संभवतः कुछ कठिनाई हो, किन्तु छायावादी अप्रस्तुत-विधान तथा प्रतीक-शैली को समझने के बाद वे इन कवियों के काव्य-वैभव का आनंद ले सकेंगे।

काव्य-संकलन के प्रथम भाग की भाँति यहाँ भी पाठों के अंत में प्रश्नों और अभ्यासों की व्यवस्था की गई है। हमें आशा है कि इनके द्वारा छात्रों को काव्य के मर्म तक पहुँचने में सहायता मिलेगी और वे स्वतंत्र रूप से काव्य-सौन्दर्य के चिन्तन एवं प्रकाशन में प्रवृत्त हो सकेंगे।

विषय-सूची

भूमिका

लगभग एक सहस्र वर्ष की काल-सीमा में व्याप्त हिन्दी-काव्य-साहित्य का विभाजन इतिहास-लेखकों ने युग-विशेष की साहित्यिक प्रवृत्ति के आधार पर किया है। हिन्दी कविता के प्रारंभिक काल से लेकर आधुनिक काल तक अनेक प्रकार की विचारधारा, भाषा और अभिव्यंजना-शैली का प्रयोग हुआ है। इन्हीं के आधार पर हिन्दी-कविता का इतिहास निम्नांकित चार युगों में बाँटा गया है :

१. वीरगाथा काल
२. भक्तिकाल
३. रीतिकाल
४. आधुनिक काल

प्राकृत भाषा की अंतिम अपभ्रंश अवस्था से ही हिन्दी-कविता का प्रारंभ माना जाता है। अपभ्रंश या प्राकृताभास रचनाओं की उपलब्धि तो सातवीं शताब्दी से ही होती है, किन्तु उन रचनाओं की भाषा को अधिकांश विद्वान हिन्दी नहीं मानते। यद्यपि उनके बहुत से छंद, काव्यरूप और विचार परवर्ती हिन्दी-साहित्य में उपलब्ध हो जाते हैं फिर भी उनकी भाषा प्राकृत के अधिक निकट है। अतः उस काल की रचनाओं को हिन्दी-साहित्य के इतिहास में प्रमुख स्थान नहीं दिया जाता। उस काल की कोई एक विशिष्ट प्रवृत्ति भी निर्धारित नहीं की जा सकी है। धर्म, नीति, शृंगार, वीर सभी प्रकार की रचनाएँ इस काल में उपलब्ध होती हैं। उसके उपरांत सिद्धों और नाथपंथी साधुओं की जो रचनाएँ मिलती हैं वे भाषा की दृष्टि से शुद्ध साहित्य की कोटि में नहीं आतीं। उनमें गुह्य साधना और योगविषयक रहस्यमयी उक्तियाँ हैं। संप्रदाय से इतर व्यक्ति उनके गुह्यार्थ को नहीं समझ सकते। बौद्धसिद्धों की वाणियाँ अपभ्रंश से मिलती जुलती हैं। जैन आचार्यों की रचनाएँ परिनिष्ठित अपभ्रंश में हैं। इन जैन कवियों में स्वयंभू, पुष्पदंत, हेमचंद्र आदि की रचनाओं में उच्चकोटि का साहित्य मिलता है। जैनेतर रचनाओं में अब्दुल रहमान का **'संदेश रासक'** बहुत सुंदर विरह-काव्य है। जैनाचार्यों की जो सुंदर कृतियाँ परिनिष्ठित अपभ्रंश में प्राप्त हैं उनमें **'शब्दानुशासन', 'प्रबंध चिन्तामणि', 'कुमारपालचरित'** बहुत प्रसिद्ध हैं। परिनिष्ठित अपभ्रंश से कुछ आगे विकसित हुई और स्थानीय बोलियों से प्रभावित भाषाओं की रचनाएँ भी मिली हैं। अपभ्रंश में देश्य भाषा का सम्मिश्रण करके **'अवहट्ठ'** नाम से काव्य रचना करनेवाले मैथिल-कोकिल विद्यापति ठाकुर का नाम इस काल में विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

वीरगाथा काल

अपभ्रंश भाषा के साथ ही जनसाधारण की बोली में कविता लिखना भी प्रारंभ हो गया था। भाट और चारणों द्वारा लिखे गए इस काल के प्रशस्ति-पद्य इस बात के प्रमाण हैं कि साहित्यिक अपभ्रंश को छोड़कर बोलचाल की भाषा का प्रयोग व्यापक रूप में स्वीकार होने लगा था। उस काल के भाट-चारण कवि अपने आश्रयदाता राजाओं के शौर्य और पराक्रम का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन करते थे। रणभूमि में जाकर वीरों के हृदय में उत्साह की उमंग उत्पन्न करने में उनकी कविता सफल हुई है। इस प्रकार की कविता की प्रधानता होने से ही यह काल हिन्दी-साहित्य के इतिहास में 'वीरगाथा काल' कहा जाता है।

इस काल की रचनाएँ दो रूपों में मिलती हैं—एक प्रबंध काव्य के साहित्यिक रूप में और दूसरे वीरगीतों के रूप में। साहित्यिक प्रबंध के रूप में उपलब्ध सबसे पुराना काव्यग्रंथ चंदवरदाई रचित **'पृथ्वीराज रासो'** माना जाता है। यद्यपि कुछ रासो ग्रंथ इससे भी पुराने बताए जाते हैं, परंतु उनकी प्रामाणिकता संदिग्ध है। वर्तमान रूप में उपलब्ध **'पृथ्वीराज रासो'** भी पूर्णरूप से प्रामाणिक ग्रंथ नहीं कहा जा सकता, किन्तु अब विद्वान यह स्वीकार करने लगे हैं कि इसका कुछ अंश निश्चय ही पुराना और प्रामाणिक है। जगनिक इस काल के लोकप्रिय गायक कवि हैं, जिनका **'परमाल रासो'** तो अब उपलब्ध नहीं है, पर उसी के ऊपर विकसित लोक-गीत **'आल्हखंड'** के कई प्रादेशिक रूपांतर मिल जाते हैं जो ग्रामीण जनता का मनोरंजन करने में समर्थ हैं। इस काल के कवियों का मुख्य वर्ण्य विषय युद्ध है, अतः वीररसात्मक काव्य की प्रधानता स्वाभाविक है। इस काल में युद्ध के अतिरिक्त विवाह, आखेट, प्रेम, नगर-वर्णन आदि भी यथाप्रसंग मिलते हैं।

इस काल की कविता की भाषा ओजगुणप्रधान है। इसमें अपभ्रंश से विकसित पुरानी हिन्दी का रूप मिलता है, जिसमें द्वित्व वर्णों का प्राचुर्य है। छप्पय, दूहा, तोटक, पज्झटिका, वीर (आल्हा) आदि इस युग की कविता के प्रमुख छंद हैं।

इस काल की काव्य-शैली तथा प्रमुख प्रवृत्तियाँ संक्षेप में इस प्रकार हैं :

१. आश्रयदाताओं की प्रशंसा; उनके युद्ध, विवाह और आखेट का वर्णन।
२. विषयानुकूल ओजमयी भाषा का प्रयोग।
३. युद्धों का सुंदर, सजीव एवं वीररसपूर्ण वर्णन।
४. ऐतिहासिक कथाओं का कल्पना के योग से काव्यमय वर्णन।

भक्तिकाल

वीरगाथा काल के पश्चात् हिन्दी काव्य के वर्ण्य विषय एवं भावना में परिवर्तन हुआ। प्रशस्तिपरक वीरकाव्यों का प्रणयन प्रायः समाप्त हो गया और

उसके स्थान पर ईश्वरभक्ति का प्रबल प्रवाह दृष्टिगोचर होने लगा। यह परिवर्तन आकस्मिक नहीं था बल्कि भक्ति की धारा से प्रभावित होकर आया था। तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों ने भी भक्तिकाव्य के उपयुक्त वातावरण की सृष्टि करने में योग दिया था। भक्ति आंदोलन को जनसाधारण में फैलाने का श्रेय स्वामी रामानंद को दिया जाता है।

भक्तिकाल की रचनाएँ मुख्यतः ईश्वरभक्ति-संबंधी दो प्रकार की विचारधाराओं पर आधृत हैं—निर्गुण भक्ति एवं सगुण भक्ति।

निर्गुण भक्ति की धारा दो रूपों में विभक्त हो गई है—पहली ज्ञानाश्रयी शाखा और दूसरी प्रेममार्गी शाखा।

सगुण भक्ति पर आधृत रचनाएँ भी दो प्रकार की हैं—एक रामभक्ति-संबंधी और दूसरी कृष्णभक्ति-संबंधी।

निर्गुण संत कवियों में स्वामी रामानंद के शिष्य कबीर का स्थान सर्वोपरि है। इन्होंने निर्गुण एवं निराकार ईश्वर की भक्ति का प्रचार करते हुए बाह्याडंबर एवं व्रत, तीर्थाटन, नमाज, रोजा आदि के बहिष्कार पर बल दिया। ईश्वर के निर्गुण और निराकार रूप को स्वीकार कर भक्तिकाव्य की रचना करनेवालों में नानक, दादू, मलूकदास, रैदास आदि उच्चकोटि के संतकवि प्रसिद्ध हैं। इन संतों की काव्य-साधना तो आनुषंगिक थी; मुख्य रूप से तो ये संत थे और अपनी भक्ति-भावना की अभिव्यक्ति के लिए ही कविता किया करते थे।

प्रेममार्गी शाखा के कवि प्रेम को ही ईश्वर-प्राप्ति का मूलाधार मानते थे। इन कवियों ने इस्लाम की सूफ़ी विचारधारा के अनुसार ईश्वर को निर्गुण मानते हुए लौकिक प्रेमगाथाओं के माध्यम से आध्यात्मिक प्रेम का स्वरूप अपनी कृतियों में व्यक्त किया। इस शाखा के अधिकांश कवि मुसलमान थे। इन्होंने भारतीय प्रेमगाथाओं के माध्यम से अपने अध्यात्मज्ञान का विस्तार किया है। जायसी, कुतबन, मंझन इस प्रेमाश्रयी शाखा के प्रमुख कवि हैं। इस शाखा के सर्वश्रेष्ठ कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने **'पदमावत'** नामक प्रबंधकाव्य में रत्नसेन और पद्मावती की लोकविश्रुत कथा को आध्यात्मिक धरातल पर प्रतिष्ठित किया है।

इन प्रेममार्गी संतों की रचनाएँ प्रायः अवधी भाषा में हैं और दोहा-चौपाई उनके प्रमुख छंद हैं। इन कवियों की प्रेमगाथाएँ समासोक्ति शैली में लिखी गई हैं जिनमें कहानी के साथ-साथ परोक्ष रूप से इन कवियों के आध्यात्मिक भाव एवं प्रेम का भी चित्रण होता चलता है।

निर्गुण भक्ति की शुष्कता और कठोरता से सामान्य जनता के भीतर ईश्वरभक्ति का प्रवाह उतने वेग से नहीं बहा जितना अपेक्षित था। आडंबरों के विरोध में कबीर आदि की वाणी में कुछ ऐसी प्रखरता और कटुता आ गई थी जिससे निर्गुण भक्ति के प्रति शिक्षित जनता का आकर्षण नहीं हुआ। फलतः ईश्वर

के सगुण रूप की ओर भक्त कवियों का ध्यान जाना स्वाभाविक था।

रामभक्तिशाखा के सबसे महान कवि गोस्वामी तुलसीदास हैं। तुलसी ने राम को ईश्वर का अवतार मानकर उनके सगुण स्वरूप का प्रतिपादन अपने **'रामचरितमानस'** में बड़े विस्तार से किया। **'विनयपत्रिका'** में उन्होंने विविध देवी-देवताओं की पूजा-अर्चा का पथ भी प्रशस्त किया। गोस्वामी जी लोक-संग्रह की भावना को स्वीकार कर काव्य-रचना में प्रवृत्त हुए थे। फलत: उनका काव्य बहुत शीघ्र ही लोकप्रिय हो गया। रामभक्तिशाखा के अन्य कवियों में अग्रदास, नाभादास, हृदयराम आदि हैं। केशवदास ने भी **'रामचंद्रिका'** लिखकर रामभक्ति का परिचय दिया है। रामभक्ति का श्रृंगारपरक रूप अठारहवीं शताब्दी में विकसित हुआ और माधुर्योपासना के प्रभाव से राम-सीता भी कृष्ण-राधा के समान चित्रित होने लगे।

कृष्णभक्तिशाखा के कवियों ने कृष्ण को अपना आराध्य देव माना था और कृष्ण की ब्रजलीलाओं का मुख्य रूप से वर्णन किया था। **'भागवत पुराण'** को उपजीव्य ग्रंथ मानकर कृष्णभक्ति के प्रमुख कवि कृष्ण-लीला वर्णन में प्रवृत्त हुए थे। इन कृष्णभक्त कवियों ने कृष्ण का स्तवन अपने-अपने संप्रदाय की भावना के अनुरूप ही किया है। अष्टछाप के कवियों ने वल्लभसंप्रदाय की भावना को स्वीकार कर कृष्ण के बालरूप का विस्तार से वर्णन किया है। महाकवि सूरदास इस क्षेत्र के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं।

सूरदास ने **'भागवत'** के आधार पर **'सूरसागर'** नाम के विशाल काव्य की रचना की है, जिसमें कृष्ण की बाल-लीला तथा गोपियों के प्रेम, संयोग और वियोग का विशद वर्णन है। इस शाखा के कवियों ने ब्रजभाषा और पद-शैली में रचनाएँ की हैं। कृष्णभक्ति शाखा की परंपरा सैकड़ों वर्षों तक चलती रही और आगे चलकर जब श्रृंगारिक रचनाओं की प्रधानता हो गई तब राधा और कृष्ण प्रेम के आलंबन हो गए।

भक्तिकालीन कविता की शैली तथा प्रमुख प्रवृत्तियाँ संक्षेप में इस प्रकार हैं :

१. निर्गुण ज्ञानाश्रयी शाखा के कवि निराकार ईश्वर के उपासक, गुरु की महत्ता में विश्वास रखनेवाले, रूढ़िवाद और मिथ्याडंबर के विरोधी तथा जातिपाँति के बंधन को अस्वीकार करनेवाले थे। इनके काव्य की भाषा सीधी-सादी, अलंकार-विहीन तथा अनेक भाषाओं एवं बोलियों से मिली-जुली होती थी। इसी से इस भाषा को सधुक्कड़ी भाषा कहते हैं। दोहा और पद इनके प्रमुख छंद हैं।

२. निर्गुण प्रेममार्गी शाखा के कवि भारतीय चरितकाव्यों के आधार पर प्रेमगाथाएँ लिखनेवाले कवि हैं। काव्य-शैली सर्गबद्ध न होकर फ़ारसी

की मसनवी शैली पर है। इनकी भाषा अवधी है। दोहा और चौपाई प्रमुख छंद हैं।

३. सगुण भक्त कवि राम और कृष्ण के अवतारी रूप के उपासक थे। अपने इष्ट देव का गुणगान तथा लीला वर्णन इनकी प्रमुख प्रवृत्ति है। ये कवि कविता को भक्ति का साधन मानकर लिखते थे। ये राजाश्रय से विमुख थे। तुलसीदास ने अवधी और ब्रजभाषा दोनों में तथा कृष्ण-भक्त कवियों ने ब्रजभाषा में कविता की। कृष्णभक्ति में वात्सल्य और शृंगार की तथा रामभक्ति में शांत और दास्य भावना की प्रधानता थी। रामभक्ति शाखा के कवियों ने प्रबंध शैली और कृष्णभक्ति शाखा के कवियों ने मुक्तक शैली अपनाई। इस समय दोहा, चौपाई, कवित्त, सवैया और रागबद्ध पदों में कविता की गई।

रीतिकाल

देश में मुग़ल साम्राज्य के स्थापित हो जाने पर जब समाज में विलासिता की प्रवृत्ति बढ़ने लगी तब साहित्य पर भी उसका प्रभाव पड़ा। कवि राजदरबारों के आश्रय में रहकर शृंगारिक कविता करने लगे। इस युग की रचनाएँ प्रायः काव्यशास्त्रों के लक्षणों—रस, अलंकार, छंद आदि—को समझाने के लिए लिखी गईं। इसीलिए इन्हें रीति-ग्रंथ भी कहते हैं। काव्यांगों के शास्त्रीय विवेचन के साथ शृंगार और प्रेम का वर्णन इस काल के कवियों ने विशेष रूप से किया है। कवित्त, सवैया और दोहा इस काल के मुख्य छंद हैं। रीतिकालीन कवि ब्रजभाषा में प्रांजलता, लालित्य और सुकुमारता लाने में बड़े सफल रहे। इस युग के प्रमुख कवियों में देव, मतिराम, बिहारी, भिखारीदास और पद्माकर का नाम प्रसिद्ध है। भूषण, सूदन और लाल इसी काल में वीर रस की कविता के लिए प्रसिद्ध हैं।

रीतिकालीन कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ संक्षेप में निम्नलिखित हैं:

१. इस काल के कवियों ने राजाश्रय में रहकर तत्कालीन कलाप्रेम को कविता के माध्यम से व्यक्त किया। इसलिए भावपक्ष की जगह कलापक्ष की प्रधानता रही।

२. इस काल में काव्यशास्त्र के लक्षण और उदाहरण प्रस्तुत करनेवाली रचनाएँ लिखी गईं। शृंगार को रसराज मानकर उसका विस्तारपूर्वक वर्णन हुआ। नायक-नायिका भेद, षड्ऋतु वर्णन, बारहमासा आदि का उद्दीपन-रूप में वर्णन किया गया।

३. इस काल में मुक्तक काव्य ही मुख्यतः रचे गए। दोहा, कवित्त तथा सवैया छंद की प्रधानता रही।

४. इस काल में ब्रजभाषा ही काव्य की भाषा थी, जिसमें अधिकाधिक

सुकुमारता लाने का प्रयत्न कवियों ने किया। काव्यांग-विवेचन संस्कृत-ग्रंथों के आधार पर किया गया, जिसमें अनेक त्रुटियाँ परिलक्षित होती हैं।

५. इस काल के काव्य का विषय श्रृंगार-प्रधान था, किन्तु वीर रस एवं नीति-संबंधी काव्य भी रचे गए।

आधुनिक काल

१९वीं सदी के उत्तरार्ध में सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक आंदोलनों के परिणामस्वरूप हिन्दी-साहित्य में नई चेतना आई और काव्य के वर्ण्य विषय व्यापक हुए। इस समय की कविता में स्वदेश, स्वधर्म और स्वभाषा के प्रति प्रेम की भावना को अभिव्यक्ति मिली। भारतेन्दु इस नवीन आंदोलन के अग्रणी थे और इसीलिए इस युग को उनके नाम पर भारतेन्दु युग कहते हैं। कविता की भाषा ब्रजभाषा ही बनी रही।

आधुनिक युग के द्वितीय उत्थान में ब्रजभाषा की जगह खड़ीबोली में ही कविता करने की ओर कवियों का ध्यान गया। महावीरप्रसाद द्विवेदी, श्रीधर पाठक, अयोध्यासिंह उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त आदि ने खड़ीबोली में कविता की और प्राचीन कथाओं को नए रूप में लिखा। अतीत-गौरव और राष्ट्र-प्रेम इस युग के प्रधान स्वर हैं। **'भारत-भारती'** इस भावना की प्रतिनिधि रचना है।

छायावाद और रहस्यवाद आधुनिक युग के तृतीय उत्थान की प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं। यह युग पुरातनता के प्रति विद्रोह और नवीन मान्यताओं के सृजन का युग है। क्या भाव, क्या भाषा और क्या छंद-विधान, सभी में नवीनता का आगमन हुआ है। भाषा की दृष्टि से खड़ीबोली में बड़ी शक्ति आई और उसमें लाक्षणिकता, चित्रमयता तथा प्रतीकात्मकता का समावेश हुआ। भाव की दृष्टि से प्रेम, प्रकृति-सौन्दर्य, राष्ट्र-प्रेम, नारी के प्रति सम्मान तथा मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति के साथ-साथ अनंत और अज्ञात प्रियतम को आलंबन मानकर भी कविताएँ हुईं। आत्मपरक अनुभूति, करुणा, वेदना, अतृप्ति, पलायन आदि के स्वर भी इस समय की कविता में मुखरित हुए हैं। प्राचीन छंदों की जगह नए छंदों की भी सृष्टि हुई और अतुकांत कविताएँ भी प्रचुरता से रची गईं। प्रगीत मुक्तकों की रचना विशेष रूप से हुई। हिन्दी-कविता में नए अलंकारों, जैसे—मानवीकरण, विशेषण-विपर्यय आदि का भी समावेश हुआ। प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी इसके प्रतिनिधि कवि हैं। छंद-बंध-हीन तथा ओजस्वी भाषा के लिए निराला और कोमलकांत पदावली के लिए पंत विशेष प्रसिद्ध हैं। **'आँसू'**, **'कामायनी'**, **'परिमल'**, **'अनामिका'**, **'पल्लव'**, **'गुंजन'**, **'यामा'** और **'दीपशिखा'** छायावाद की प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

छायावाद की कविता जीवन की यथार्थता और वास्तविक संघर्ष से दूर जा पड़ी थी और उसमें सूक्ष्म भावनाओं एवं काल्पनिक विचारों को ही विशेष अभिव्यक्ति मिली थी। सामाजिक जीवन से भी उसका संबंध न था। संभवतः इसी की प्रतिक्रियास्वरूप प्रगतिवाद का प्रारंभ हुआ। किसान, मज़दूर, दीन और पददलित तथा सर्वसामान्य जीवन काव्य के विषय बन गए। प्रगतिवादी कविता मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित है। विषय की भाँति भाषा के क्षेत्र में भी परिवर्तन हुआ और वह जनसामान्य की भाषा के निकट आ गई। पंत की **'युगवाणी'** और **'ग्राम्या'** इस प्रकार की प्रतिनिधि रचनाएँ हैं।

प्रगतिवाद के पश्चात् हिन्दी-कविता ने एक नई दिशा ग्रहण की, जिसे 'प्रयोगवाद' अथवा 'नई कविता' के नाम से अभिहित किया गया है। इसमें कविता के प्राचीन लक्षणों, रूपों और विधानों का सर्वथा तिरस्कार किया गया है। इस कविता में अभिव्यक्ति के लिए उन प्रतीकों, बिम्बों और साधनों का प्रयोग किया जाता है जो यथार्थ जीवन से उत्पन्न होते हैं। इन कविताओं में वैयक्तिक अनुभूति की ही प्रधानता है। अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, धर्मवीर भारती आदि प्रयोगवादी कवि हैं।

दिनकर, बच्चन, अंचल, नरेन्द्र शर्मा, भगवतीचरण वर्मा आधुनिक युग के ऐसे प्रसिद्ध कवि हैं जिन्होंने किसी विशेष वाद का आश्रय नहीं लिया और स्वतंत्र रूप से आधुनिक जीवन की समस्याओं एवं भावनाओं पर कविता की। इन कवियों ने बहुत सुंदर सरस प्रगीत मुक्तकों की सृष्टि की है। राष्ट्रीय भावनाओं को सशक्त रूप से व्यक्त करनेवाले कवियों में दिनकर और सोहनलाल द्विवेदी का विशेष महत्त्व है।

संक्षेप में हिन्दी-कविता का एक सहस्र वर्ष का इतिहास विषय, भाषा, शैली एवं विधाओं (प्रबंधकाव्य, खंडकाव्य, मुक्तक गीत, प्रगीत, अतुकांत) से सुसंपन्न है और आज भी हिन्दी कविता सामाजिक चेतना के साथ-साथ विकास के पथ पर अग्रसर हो रही है।

आधुनिक युग की प्रमुख प्रवृत्तियाँ एवं शैलीगत विशेषताएँ संक्षेप में निम्नलिखित हैं :

१. **भारतेन्दु युग**—रीतिकालीन काव्य का आदर्श एकनिष्ठ सत्ता की ओर अभिमुख था तो इस युग का आदर्श लोकनिष्ठ सत्ता की ओर उन्मुख हुआ। जीवन और साहित्य का जो संबंध रीतिकाल में शिथिल पड़ गया था, वह आधुनिक युग में फिर से घनिष्ठ होने लगा। देशोद्धार, राष्ट्रप्रेम, अतीत-गौरव आदि विषयों की ओर ध्यान जाने से जनता में छाई हुई हीनता की भावना दूर होने लगी और अपनी राष्ट्रीयता का कवियों की वाणी में उद्घोष दृष्टिगत हुआ।

२. द्विवेदी युग— भारतेन्दु युग के बाद द्विवेदी युग में खड़ीबोली को कविता की भाषा के रूप में स्वीकृति प्राप्त हुई और कविता में कल्पना और सांकेतिकता का लोप हुआ। इतिवृत्तात्मकता बढ़ने लगी। संस्कृत के छंदों का हिन्दी में डटकर प्रयोग होने लगा। तत्सम पदावली का प्राचुर्य लक्षित हुआ। शनैः-शनैः खड़ीबोली में मार्दव और सौकुमार्य आया, फलतः लक्षणामूलक प्रतीकात्मक शैली का काव्य भी खड़ीबोली में लिखा जाने लगा। विषय की दृष्टि से इस काल की कविता सामाजिक या पौराणिक ही है।

३. छायावाद— छायावाद युग में काव्य में नूतन प्रवृत्ति और काव्यशैली का प्रादुर्भाव हुआ। मुक्तक गीतात्मक शैली के काव्य की इस युग में प्रधानता हुई। अंतर्वृत्तियों का निरूपण तथा सांकेतिक शैली में मनोवैज्ञानिक विषयों का वर्णन इस युग में विशेष रूप से प्रारंभ हुआ। स्वच्छंदतावाद और अभिव्यंजनावाद के आश्रय में शब्दों और छदों में नूतन प्रयोग प्रारंभ हुए। रूढ़िग्रस्त काव्य-विषय और उपमानों का त्याग कर दिया गया।

छायावादी कविता में नूतन प्रतीकों की प्रधानता है। पंत, प्रसाद, निराला और महादेवी के काव्य में प्रतीकों की नूतनता उल्लेख्य है। भाषा का लाक्षणिक प्रयोग भी वर्तमान काव्य की प्रमुख विशेषता है। रहस्यवादी कविता में अप्रस्तुत योजना भी नई है। प्रकृति के प्रति नवीन दृष्टिकोण का उन्मेष हुआ। सौन्दर्य, प्रेम और श्रृंगार इस कविता की विशेषताएँ हैं।

४. प्रगतिवाद— प्रगतिवादी कविता में राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक शोषण से मुक्ति का स्वर प्रधान है। इस कविता पर मार्क्सवाद का भी प्रभाव है। किसान, मजदूर और शोषित वर्ग का पक्ष लेकर बौद्धिक धरातल पर कविता में भाव-योजना की जाती है। प्रगतिवाद का शुद्ध सात्विक रूप पंत जी की **'युगवाणी'**, **'ग्राम्या'** आदि रचनाओं में उपलब्ध होता है।

५. प्रयोगवाद— प्रयोग के नाम पर भाव, विचार, प्रक्रिया, छंद, प्रतीक, अलंकार सब में परिवर्तन करने की प्रवृत्ति पाँचवें दशक में देखी गई। यही प्रवृत्ति आजकल नई कविता के नाम से व्यवहृत होती है। इस कविता में बौद्धिक चिन्तन की प्रधानता है। छंद और अप्रस्तुत योजना सर्वथा नूतन रहती है।

काव्यास्वादन और समालोचना

कविता का लक्ष्य उसके सौन्दर्य की अनुभूति द्वारा आनंद की प्राप्ति है। इस आनंद की अभिव्यक्ति तथा कविता के गुण-दोषों का विवेचन और मूल्यांकन ही समालोचना है। दूसरे शब्दों में समालोचना द्वारा यह स्पष्ट किया जाता है कि कवि द्वारा चित्रित प्राकृतिक दृश्यों एवं मानवीय भावों—सुख-दुःख, हर्ष-विषाद आदि—का चित्रण कहाँ तक उपयुक्त, सजीव एवं मर्मस्पर्शी हुआ है। कवि के भाव, अनुभूति और विचार क्या हैं और उनमें कहाँ तक उदात्तता, गहनता, व्यापकता, यथार्थता और कल्पना की सजीवता है, इसे समझने में भी समालोचना सहायक होती है। कवि किसी विषय का केवल तथ्यात्मक विवरण नहीं प्रस्तुत करता, बल्कि उसे अपनी कल्पना द्वारा एक नया रूप और रंग देकर इस रूप में प्रस्तुत करता है जिससे वह भावुकों के लिए आह्लादकारी बन सके। इस कल्पना-तत्त्व का विश्लेषण भी आस्वादन के लिए आवश्यक है।

कविता के रसास्वादन के लिए केवल भावपक्ष अथवा वर्ण्य विषय के ही सौन्दर्य का विश्लेषण पर्याप्त नहीं है, बल्कि उसके शैलीपक्ष को भी जानने की आवश्यकता है। इस दृष्टि से कवि की भाषा की प्रांजलता, लाक्षणिकता, सामासिक शक्ति, अर्थ-गौरव, अलंकार, छंद, गति, यति और संगीत-तत्त्व को समझने की आवश्यकता पड़ती है। समालोचना इन तत्त्वों को स्पष्ट एवं सुबोधगम्य बनाने में सहायक होती है।

सामान्य रूप से तो कविता की व्याख्या करना और उस पर अपने विचार प्रकट करना भी समालोचना ही है, किन्तु इस स्तर पर शास्त्रीय पद्धति से समालोचना करने की प्रवृत्ति विद्यार्थियों में उत्पन्न होनी चाहिए और इसके लिए उन्हें समीक्षाशास्त्र की सामान्य बातें जान लेनी चाहिएँ—

(१) कविता की समालोचना और उसके आस्वादन के लिए सर्वप्रथम उसके प्रतिपाद्य विषय को हृदयंगम करना आवश्यक है। यह प्रतिपाद्य अथवा वर्ण्य विषय किसी भी भाव, विचार, अनुभूति, प्राकृतिक सौन्दर्य तथा जीवन एवं जगत की समस्याओं के संबंध में हो सकता है।

(२) कवि के विचार एवं दृष्टिकोण तथा उन्हें प्रभावित करनेवाली तत्कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों, साहित्यिक परंपराओं का अध्ययन भी आवश्यक है। कवि की विचारधारा इसी पृष्ठभूमि पर बनती है, अतः उसकी कृतियों का अध्ययन और मूल्यांकन इसी के आलोक में होना चाहिए।

(३) कविता के आस्वादन और उचित समालोचना के लिए यह आवश्यक है कि आलोचक के हृदय में कवि के साथ सहानुभूति हो अर्थात् उसके विचारों तथा

उसके युग की मान्यताओं को समझना चाहिए। अपने युग की तथा अपनी मान्यताओं एवं पूर्वाग्रहों के ही संदर्भ में कवि की कृतियों की समीक्षा उचित नहीं होगी। तुलसी के आदर्शों के आधार पर **'साकेत'** का और **'साकेत'** के आदर्शों के आधार पर **'रामचरितमानस'** का मूल्यांकन उचित नहीं कहा जा सकता।

(४) कवि की किसी एक कविता के आस्वादन के लिए उसके पूरे ग्रंथ का अनुशीलन सहायक होता है। इसी प्रकार कवि के किसी ग्रंथ के आस्वादन के लिए उसकी अन्य कृतियों का भी अध्ययन समयानुक्रम एवं तुलनात्मक विधि से उपयोगी होता है। यदि हम उस कवि की समग्र रूप में आलोचना करना चाहते हैं तो उसके पूर्ववर्ती एवं समकालीन कवियों का भी अध्ययन आवश्यक होगा। अर्थात् जितनी ही अधिक विस्तृत एवं व्यापक पृष्ठभूमि में हम किसी रचना का अध्ययन करेंगे उतना ही अधिक हम उसका आस्वादन कर सकेंगे और उसकी समालोचना अधिक उपयुक्त हो सकेगी।

(५) कविता के आस्वादन के लिए उसके वर्ण्य विषय अर्थात् भाव एवं विचार पक्ष का ही अध्ययन पर्याप्त नहीं है बल्कि उसकी अभिव्यंजना अर्थात् शैलीपक्ष से भी अभिज्ञ होना आवश्यक है। रस, अलंकार, छंद, गुण, वर्ण-विन्यास आदि साहित्यिक सौन्दर्य-तत्त्वों के अनुशीलन के बिना किसी कविता का आस्वादन नहीं किया जा सकता। कवि की शब्द-योजना, कल्पना, चित्रमयता एवं रूप-विधान से भी परिचित होना आवश्यक है।

(६) साहित्यिक समालोचना स्वयं एक सृजनात्मक क्रिया है और अन्य सृजनात्मक क्रियाओं की भाँति इसे सीखने के लिए भी अच्छे नमूनों की आवश्यकता पड़ती है। अतः अच्छी समालोचनाओं का अध्ययन करना चाहिए। वे कविता के रसास्वादन में भी सहायक होती हैं।

काव्य के रूप

हिन्दी-कविता का विकास मुख्यतः दो रूपों में मिलता है :

(क) प्रबंध, (ख) मुक्तक।

प्रबंध के अंतर्गत तीन रूप मिलते हैं—

(क) महाकाव्य, (ख) खंडकाव्य, और (ग) आख्यानक गीतियाँ।

मुक्तक रचनाओं के भी दो रूप मिलते हैं—

(१) पाठ्य मुक्तक और (२) गेय मुक्तक।

संक्षेप में इनके लक्षण निम्नलिखित हैं :

महाकाव्य—महाकाव्य में जीवन का समग्र रूप में चित्रण होता है। उसमें प्रायः

जातीय जीवन को उसकी अनेकानेक विशेषताओं के साथ चित्रित किया जाता है। इसकी कथा इतिहास-सिद्ध होती है। इसका नायक उदात्त एवं महत्‌चरितवाला होता है और इसमें महत्‌-कार्यों का वर्णन किया जाता है। महाकाव्य में कथा की धारावाहिकता तो रहती है, पर वह नायक के जीवन की दैनंदिनी नहीं है। हृदय को रमानेवाले मार्मिक स्थलों का ही उसमें वर्णन होता है (जैसे—**'रामचरितमानस'** में सीता-स्वयंवर, रामवनगमन, चित्रकूट सभा, सीताहरण, लक्ष्मणशक्ति आदि) पर इनके विकास में सुसंबद्धता और एकसूत्रता बनी रहती है। आचार्यों के अनुसार महाकाव्य में श्रृंगार, वीर और शांत रसों में से कोई एक रस अंगी रूप में रहता है। प्रकृति-वर्णन के रूप में नगर, समुद्र, पर्वत, संध्या, प्रातःकाल, संग्राम, यात्रा एवं ऋतुओं का वर्णन आवश्यक है।

आधुनिक युग में महाकाव्य की उपर्युक्त मान्यताओं में परिवर्तन हुआ है। इतिहास-सिद्ध कथा की जगह मानव-जीवन-संबंधी कोई भी समस्या या घटना कथावस्तु बन सकती है। इसी प्रकार चरित्र की दृष्टि से कोई भी सामान्य जन, किसान, श्रमिक, महाकाव्य का नायक हो सकता है। शैली संबंधी रूढ़ियों का भी परित्याग कर दिया गया है, पर उसका गरिमामयी होना आवश्यक है। जीवन के आदर्शों की स्थापना के स्थान पर अब यथार्थ जीवन की अभिव्यक्ति और बाह्य एवं अंतर्द्वन्द्वों के चित्रण पर बल दिया जाने लगा है। **'पदमावत'**, **'रामचरितमानस'**, **'साकेत'** और **'कामायनी'** हिन्दी के प्रसिद्ध महाकाव्य हैं।

खंडकाव्य—इसमें जीवन के एक पक्ष अथवा एक रूप का ही वर्णन किया जाता है, पर यह पक्ष अपने आप में पूर्ण होता है। इसमें किसी एक ही घटना की प्रधानता होती है और मानव-जीवन के एक ही अंग पर प्रकाश डाला जाता है। पूरी रचना में प्रायः एक ही छंद प्रयुक्त होता है। **'पंचवटी'**, **'जयद्रथ-वध'**, **'नहुष'**, **'सुदामा-चरित'**, **'स्वप्न'**, **'मिलन'**, **'पथिक'** आदि खंडकाव्य के उदाहरण हैं।

आख्यानक गीतियाँ—काव्यरूप की दृष्टि से आख्यानक गीतियाँ महाकाव्य एवं खंडकाव्य से सर्वथा भिन्न हैं। उन्हें पद्यबद्ध कहानी ही समझना चाहिए। उनमें युद्ध, शौर्य, पराक्रम, त्याग, बलिदान, प्रेम, करुणा आदि भावों के प्रेरक एवं उद्‌बोधक घटना-चित्रों का विकास होता है। इनकी शैली भी सरल और स्पष्ट होती है। वर्णन-प्रवाह स्वच्छंद होता है। विस्तृत वर्णन-स्थल कम होते हैं। इनमें गीतिमत्ता

और नाटकीय तत्त्व मुख्य रूप से पाए जाते हैं। **'झाँसी की रानी'**, **'रंग में भंग'**, **'विकट भट'** आदि इसके उदाहरण हैं।

मुक्तक काव्य—प्रबंध काव्य में जहाँ जीवन की अनेकरूपता अभिव्यक्त होती है और खंडकाव्य में जीवन के विविध रूपों में से किसी एक रूप या अंश का वर्णन रहता है, वहाँ मुक्तक काव्य में किसी एक अनुभूति, भाव, या कल्पना का चित्रण किया जाता है। इसमें प्रबंध काव्य का-सा तारतम्य नहीं रहता, बल्कि इसका प्रत्येक छंद अपने आप में पूर्ण और स्वतंत्र रूप से रसोद्रेक करने में समर्थ होता है।

मुक्तक काव्य के दो भेद निम्नलिखित हैं :

(१) **पाठ्य मुक्तक** में विषय की प्रधानता रहती है। भाव की अपेक्षा इसमें प्राय: विचार, लोकव्यवहार अथवा नैतिक भावनाओं का प्रतिपादन होता है। **'बिहारी-सतसई'**, देव और मतिराम की रचनाएँ पाठ्य मुक्तकों के सुंदर उदाहरण हैं। कबीर, तुलसी, रहीम के नीति तथा भक्ति-विषयक दोहे और सवैये भी इसके अंतर्गत आते हैं।

(२) **गेय मुक्तक** प्रगीत काव्य कहलाते हैं। अंग्रेजी के लिरिक का इसे समानार्थी माना जाता है। इस प्रकार के मुक्तकों में कवि का निजत्व एवं आत्म-परकता रहती है। भावनाओं की प्रधानता होती है और इसी कारण इनमें रागात्मकता आ जाती है। ये स्वर, लय और ताल में बँधे हुए होते हैं और गेय होते हैं। कबीर, सूर, तुलसी, मीरा, प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी और बच्चन के गीत प्रगीत मुक्तक के अंतर्गत गृहीत किए जाते हैं।

शिक्षण की दृष्टि से प्रस्तावित क्रम

काव्य-संकलन के इस भाग में भी कवियों के कालक्रम से कविताएँ संकलित की गई हैं। १० वीं-११ वीं कक्षा के विद्यार्थियों के भाषा-ज्ञान, विषय-बोध और मानसिक-विकास को ध्यान में रखते हुए शिक्षण की दृष्टि से निम्नलिखित कवि-क्रम प्रस्तावित किया जा रहा है। अध्यापक अपने प्रदेशों के विद्यार्थियों के भाषा-ज्ञान और मानसिक-विकास के आधार पर इसमें आवश्यक परिवर्तन कर सकते हैं।

प्रस्तावित क्रम :

१. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
२. सियारामशरण गुप्त
३. सुमित्रानंदन पंत
४. महादेवी वर्मा
५. माखनलाल चतुर्वेदी
६. जयशंकर प्रसाद
७. सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'
८. भारतेन्दु हरिश्चंद्र
९. जगन्नाथदास 'रत्नाकर'
१०. बिहारीलाल
११. सूरदास
१२. मीराबाई
१३. भूषण
१४. केशवदास
१५. जायसी

सूरदास

विद्वानों का मत है कि सूरदास का जन्म दिल्ली के निकट, बल्लभगढ़ से लगभग दो मील दूर 'सीही' नामक गाँव में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। सन् १४७८ ई० के आसपास इनका जन्म हुआ तथा सन् १५८३ ई० के लगभग स्वर्गवास हुआ। किशोरावस्था में ही ये विरक्त होकर मथुरा चले गए और बाद में आगरा-मथुरा के बीच गऊघाट पर साधू के रूप में रहने लगे। यहीं महाप्रभु वल्लभाचार्य से इनकी भेंट हुई। इन्होंने अपना एक पद गाकर महाप्रभु को सुनाया, जिससे वे बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने सूरदास को अपना शिष्य बना लिया। उन्हीं की आज्ञा से सूरदास ने **'श्रीमद्भागवत'** के आधार पर कृष्ण-लीला का विस्तारपूर्वक पद-शैली में गान किया।

सूरदास के विषय में प्रसिद्ध है कि ये जन्मांध थे। परंतु इनके काव्य के वर्ण्य-विषयों को देखते हुए इस बात पर विश्वास नहीं होता। इन्होंने अपनी कविता में विविध रंगों, बालकों की स्वाभाविक चेष्टाओं तथा प्राकृतिक दृश्यों का जैसा सजीव और यथार्थ चित्रण किया है, वह वस्तुओं को बिना देखे संभव नहीं।

महाकवि सूरदास श्री कृष्ण के अनन्य भक्त थे। कृष्ण के मनोहारी रूपों का वर्णन करने में सूर की कला निखर उठी है। बाल-लीला-वर्णन में जैसी तन्मयता इनकी वाणी में मिलती है वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। इनके काव्य में यद्यपि सभी रसों का समावेश हुआ है फिर भी वात्सल्य और शृंगार की प्रधानता है। इन दो रसों के चित्रण में तो सूरदास अद्वितीय हैं। इनकी कविता ब्रजभाषा में है जो साहित्यिक होते हुए भी बोलचाल की भाषा के बहुत निकट है।

सूरदास के रचे पाँच ग्रंथ कहे जाते हैं—(१) **सूरसागर,** (२) **सूर सारावली,** (३) **साहित्य-लहरी,** (४) **नल-दमयंती,** (५) **ब्याहलो**। इनमें से अंतिम दो पुस्तकें अप्राप्य हैं और उनका सूर-कृत होना भी अधिकांश विद्वानों को मान्य नहीं है। **'सूरसागर'** इनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है और यही सूर की अमर कीर्ति का आधार है। इसके विषय में प्रसिद्ध है कि इसमें सवा लाख पद हैं, किन्तु अभी तक उसके लगभग पाँच हजार पद ही प्राप्त हो सके हैं।

प्रस्तुत पद विनय, बाल-लीला तथा भ्रमरगीत से संबंधित हैं और इनका संकलन **'सूरसागर'** से किया गया है।

सूरदास

विनय

मेरौ मन अनत कहाँ सुख पावै ।
जैसें उड़ि जहाज कौ पच्छी, फिरि जहाज पर आवै ।।
कमल-नैन कौं छाँड़ि महातम, और देव कौं ध्यावै ।
परम गंग कौं छाँड़ि पियासौ, दुरमति कूप खनावै ।।
जिहिं मधुकर अंबुज-रस चाख्यौ, क्यौं करील-फल भावै ।
सूरदास-प्रभु कामधेनु तजि, छेरी कौन दुहावै ।।१।।

बाल-वर्णन

सोभित कर नवनीत लिए ।
घुटुरुनि चलत रेनु-तन-मंडित, मुख दधि लेप किए ।।
चारु कपोल, लोल लोचन, गोरोचन-तिलक दिए ।
लट-लटकनि मन मत्त मधुप-गन, मादक मधुहिं पिए ।।
कठुला-कंठ, वज्र केहरि-नख, राजत रुचिर हिए ।
धन्य सूर एको पल इहिं सुख, का सत कल्प जिए ।।२।।

किलकत कान्ह घुटुरुवनि आवत ।
मनिमय कनक नंद कैं आँगन, बिम्ब पकरिबैं धावत ।।
कबहुँ निरखि हरि आपु छाँह कौं, कर सौं पकरन चाहत ।
किलकि हँसत राजत द्वै दतियाँ, पुनि-पुनि तिहिं अवगाहत ।।
कनक-भूमि पर कर-पग-छाया, यह उपमा इक राजति ।
प्रतिकर प्रतिपद प्रतिमनि बसुधा, कमल बैठकी साजति ।।
बाल-दसा-सुख निरखि जसोदा, पुनि-पुनि नंद बुलावति ।
अँचरा तर लै ढाँकि, सूर के प्रभु कौं दूध पियावति ।।३।।

मुरली-माधुरी

सुनहु हरि मुरली मधुर बजाई ।
मोहे सुर-नर-नाग निरंतर, ब्रज-बनिता मिलि धाई ।।

जमुना-नीर-प्रवाह थकित भयौ, पवन रह्यौ मुरझाई ।
खग-मृग-मीन अधीन भए सब, अपनी गति बिसराई ।।
द्रुम, बेली अनुराग-पुलक तनु, ससि थक्यौ निसि न घटाई ।
सूर स्याम बृंदावन बिहरत, चलहु सखी सुधि पाई ।।४।।

भ्रमरगीत

हमारे हरि हारिल की लकरी ।
मन बच क्रम नँदनंदन सों, उर यह दृढ़ करि पकरी ।।
जागत, सोवत, सपने, सौंतुख कान्ह कान्ह जकरी ।
सुनतहि जोग लगत ऐसो अलि, ज्यों करुई ककरी ।।
सोई ब्याधि हमैं लै आए, देखी सुनी न करी ।
यह तौ 'सूर' तिन्हैं लै दीजे, जिनके मन चकरी ।।५।।

बिनु गोपाल बैरिन भई कुंजैं ।
तब ये लता लगति अति सीतल, अब भईं बिषम ज्वाल की पुंजैं ।।
बृथा बहति जमुना, खग बोलत, बृथा कमल फूलैं अलि गुंजैं ।
पवन, पानि, घनसार, सजीवनि, दधिसुत किरन भानु भईं भुंजैं ।।
ये ऊधो कहियो माधव सों, बिरह करद कर मारत लुंजैं ।
'सूरदास' प्रभु को मग जोवत, अँखियाँ भईं बरन ज्यों गुंजैं ।।६।।

दूर करहु बीना कर धरिबो ।
मोहे मृग नाहीं रथ हाँक्यो, नाहिन होत चंद को ढरिबो ।।
बीती जाहि पै सोई जानै, कठिन है प्रेमपास को परिबो ।
जब तें बिछुरे कमलनयन सखि, रहत न नयन नीर को गरिबो ।।
सीतल चंद अगिनि सम लागत, कहिए धरो कौन बिधि धरिबो ।
'सूरदास' प्रभु तुम्हरे दरस बिनु, सब झूठो जतननि को करिबो ।।७।।

अँखियाँ हरि दरसन की प्यासी ।
देख्यौ चाहति कमलनैन कौं, निसि-दिन रहति उदासी ।।

आए ऊधौ फिरि गए आँगन, डारि गए गर फाँसी।
केसरि तिलक मोतिनि की माला, बृंदावन के बासी॥
काहू के मन की कोउ जानत, लोगनि के मन हाँसी।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस कौं, करवत लैहौं कासी॥८॥

ऊधो मन नाहीं दस बीस।
एक हतो सो गयो स्याम सँग, को आराधे ईस?
भईं अति सिथिल सबैं माधव बिनु, यथा देह बिनु सीस।
स्वासा अटकि रहे आसा लगि, जीवहिं कोटि बरीस॥
तुम तौ सखा स्यामसुंदर के, सकल जोग के ईस।
'सूरदास' रसिक की बतियाँ, पुरवौ मन जगदीस॥९॥

ऊधो मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं।
हंस-सुता की सुंदरि कगरी, अरु कुंजनि की छाँहीं॥
वै सुरभी वै बच्छ दोहनी, खरिक दुहावन जाहीं।
ग्वाल-बाल सब करत कोलाहल, नाचत गहि गहि बाहीं॥
यह मथुरा कंचन की नगरी, मनि-मुकताहल जाहीं।
जबहिं सुरति आवत वा सुख की, जिय उमगत तनु नाहीं॥
अनगन भाँति करी बहु लीला, जसुदानंद निबाहीं।
सूरदास प्रभु रहे मौन ह्वै, यह कहि-कहि पछिताहीं॥१०॥

('सूरसागर' से)

प्रश्न और अभ्यास

१. '**सोभित कर नवनीत लिए**' पद के अनुसार श्रीकृष्ण के रूप का वर्णन कीजिए।
२. मणिजटित आँगन में घुटनों के बल चलते समय कृष्ण की शोभा का वर्णन कीजिए और कवि द्वारा प्रयुक्त उत्प्रेक्षा को स्पष्ट कीजिए।
३. **भ्रमरगीत** की क्या कथा है और उसका यह नाम क्यों पड़ा ?
४. उद्धव-गोपी-संवाद को अपने शब्दों में लिखिए।
५. '**सूरदास ने वात्सल्य रस का अत्यंत सजीव वर्णन किया है।**' उपयुक्त उदाहरण देकर इस कथन की पुष्टि कीजिए।
६. निम्नलिखित पंक्तियों का भाव स्पष्ट कीजिए :
   (क) हमारे हरि हारिल की लकरी।
   (ख) **सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस कौं, करवत लैहौं कासी।**
   (ग) **मोहे मृग नाहीं रथ हाँक्यो, नाहिन होत चंद को ढरिबो।**

मीराबाई

मीराबाई का जन्म राजस्थान में मेड़ता के निकट चोकड़ी ग्राम में सन् १४९८ ई० के लगभग हुआ था। इनके पिता का नाम रत्नसिंह था। प्रसिद्ध है कि उदयपुर के राणा सांगा के पुत्र भोजराज से इनका विवाह हुआ और कुछ वर्ष बाद ही इनके पति की मृत्यु हो गई। मीरा की मृत्यु सन् १५४६ ई० के आसपास मानी जाती है।

मीरा बाल्यकाल से ही कृष्णभक्ति में लीन रहती थीं और इनका अधिकांश समय साधुओं के सत्संग में व्यतीत होता था। ये मंदिरों में कृष्ण की मूर्ति के सामने नाचती और गाती थीं, इसलिए परिवार के लोग इनसे रुष्ट रहते थे। कहा जाता है कि इनके देवर ने इन्हें विष दिलवाया, किन्तु भगवत्कृपा से इन पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। मीरा के कुछ पदों में रैदास को गुरु-रूप में स्मरण किया गया है। तुलसीदास के साथ भी इनके पत्र-व्यवहार का उल्लेख मिलता है।

गोपियों के समान ही मीरा ने कृष्ण को अपना पति मानकर माधुर्य भाव से उपासना की है। इनके जीवन का आदर्श केवल कृष्णभक्ति में लीन रहना ही था। मीरा के पदों में अपूर्व तल्लीनता और आत्म-समर्पण का भाव है। इनके पदों का प्रभाव हिन्दी-क्षेत्र के बाहर भी लक्षित होता है और वे गुजराती की कवयित्री भी मानी जाती हैं।

मीरा की काव्य-भाषा एक-सी नहीं है। कुछ पदों में शुद्ध साहित्यिक ब्रजभाषा है और कुछ में राजस्थानी का मिश्रण है। कहीं-कहीं गुजराती, पूर्वी हिन्दी तथा पंजाबी के प्रयोग भी मिलते हैं। सहजता और सरलता इनके काव्य के विशेष गुण हैं। अपने तीव्र मनोभावों को इन्होंने सीधे-सादे शब्दों में प्रकट किया है।

इनकी निम्नलिखित चार पुस्तकें बताई जाती हैं जो **'मीरा की पदावली'** के नाम से प्रकाशित हैं—**'नरसीजी का मायरा'**, **'गीतगोविन्द टीका'**, **'राग गोविन्द'**, **'राग सोरठ के पद'**।

मीराबाई

पद

मन रे परसि हरि के चरण ।

सुभग सीतल कँवल-कोमल, त्रिबिध ज्वाला-हरण ।।
जिण चरण प्रहलाद परसे, इंद्र-पदवी-धरण ।
जिण चरण ध्रुव अटल कीने, राखि अपनी शरण ।।
जिण चरण ब्रह्मांड भेंट्यो, नख सिखाँ सिरी धरण ।
जिण चरण प्रभु परसि लीने, तरी गौतम-घरण ।।
जिण चरण कालिनाग नाथ्यो, गोप-लीला-करण ।
जिण चरण गोबरधन धार्‌यो, इंद्र को ग्रब-हरण ।।
दासि 'मीरा' लाल गिरिधर, अगम तारण-तरण ।।१।।

बसौ मोरे नैनन में नँदलाल ।

मोर मुकुट मकराकृत कुंडल, अरुन तिलक दिए भाल ।।
मोहनी मूरति साँवरी सूरति, नैना बने बिसाल ।
अधर-सुधा-रस मुरली राजत, उर बैजंती माल ।।
छुद्र घंटिका कटि-तट सोभित, नूपुर सबद रसाल ।
'मीरा' प्रभु संतन सुखदाई, भगतबछल गोपाल ।।२।।

मीरा मगन भई हरि के गुण गाय ।

साँप पेटारा राणा भेज्या, मीरा हाथ दियो जाय ।।
न्हाय धोय जब देखण लागी, सालिग्राम गई पाय ।
जहर का प्याला राणा भेज्या, इम्रत दीन्ह बनाय ।।
न्हाय धोय जब पीवण लागी, हो गई अमर अँचाय ।
सूल सेज राणा ने भेजी, दीज्यो मीरा सुलाय ।।
साँझ भई मीरा सोवण लागी, मानों फूल बिछाय ।
'मीरा' के प्रभु सदा सहाई, राखे बिघन हटाय ।।
भजन भाव में मस्त डोलती, गिरिधर पै बलि जाय ।।३।।

हरी तुम हरौ जन की भीर ।
द्रौपदी की लाज राखी, तुरत बाढ्यो चीर ।।
भगत कारण रूप नरहरि धर्‌यो नाहिंन धीर ।
बूड़तो गजराज राख्यो, कियौ बाहर नीर ।।
दासि 'मीरा' लाल गिरिधर, चरण-कँवल पै सीर ।।४।।

घड़ी एक नहिं आवड़े, तुम दरसण बिन मोय ।
तुम हो मेरे प्राणजी, कैसें जीवण होय ।।
धान न भावै, नींद न आवै, बिरह सतावै मोय ।
घायल सी घूमत फिरूँ रे, मेरो दरद न जाणे कोय ।।
दिवस तो खाय गमाइयो रे, रैण गमाई सोय ।
प्राण गमायो झुरताँ रे, नैण गमायो रोय ।।
जो मैं ऐसा जाणती रे, प्रीत कियाँ दुख होय ।
नगर ढँढोरा फेरती रे, प्रीत करो मत कोय ।।
पंथ निहारूँ डगर बुहारूँ, ऊभी मारग जोय ।
'मीरा' के प्रभु कब रे मिलोगे, तुम मिलियाँ सुख होय ।।५।।

भजु मन चरण-कँवल अविनासी ।
जेताइ दीसे धरण-गगन-बिच, तेताइ सब उठि जासी ।।
कहा भयो तीरथ ब्रत कीन्हे, कहा लिए करवत कासी ।
इस देही का गरब न करना, माटी में मिल जासी ।।
यो संसार चहर की बाजी, साँझ पड़्याँ उठ जासी ।
कहा भयो है भगवा पहर्‌याँ, घर तज भए सन्यासी ।।
जोगी होय जुगति नहिं जाणी, उलटि जनम फिर जासी ।
अरज करूँ अबला कर जोरें, स्याम तुम्हारी दासी ।।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर, काटो जम की फाँसी ।।६।।

('मीराँ-माधुरी' से)

प्रश्न और अभ्यास

१. तीर्थ-व्रत तथा काशी-करवत को कवयित्री ने व्यर्थ क्यों बताया है ?
२. कृष्ण के किस रूप को मीरा अपनी आँखों में बसाना चाहती हैं ? उसका संक्षेप में वर्णन कीजिए।
३. संसार को मीरा ने **'चहर की बाजी'** क्यों कहा है ? इसके द्वारा वे जीवन का क्या आदर्श रखना चाहती हैं ?
४. तीसरे पद में मीरा ने अपने जीवन की किन घटनाओं का वर्णन किया है ?
५. **अहल्या, बलि, द्रौपदी** और **गजराज** की अंतःकथाएँ अपने शब्दों में लिखिए।
६. भावार्थ लिखिए :

(क) **काटो जम की फाँसी।**

(ख) **त्रिविध ज्वाला-हरण।**

७. इन शब्दों के खड़ीबोली रूप लिखिए :

पड़्याँ, व्रब, जेताइ, नैनन में।

जायसी

मलिक मुहम्मद जायसी का जन्म सन् १५०० ई० के लगभग माना जाता है। जायसी ने अपने 'आख़िरी कलाम' में पुस्तक का रचनाकाल दिया है; उसी के आधार पर यह समय निर्धारित किया गया है। ये उत्तरप्रदेश के जायस नामक कस्बे के निवासी थे। जायसी का बाह्य व्यक्तित्व प्रभावशाली नहीं था। पिता की मृत्यु बचपन में ही हो जाने के कारण इनका लालन-पालन ननिहाल में हुआ था। बड़े होने पर ये अपने जन्म-स्थान लौट आए और वहीं सन् १५५८ ई० में इनकी मृत्यु हुई।

जायसी प्रेमाख्यानक परंपरा के कवियों में सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। इनकी अमर कृति 'पदमावत' एक आध्यात्मिक प्रेम-गाथा है जो फ़ारसी की मसनवी शैली में लिखी गई है। 'पदमावत' की कथावस्तु के लिए जायसी ने प्रेममार्गी सूफ़ी कवियों की भाँति कोरी कल्पना से काम न लेकर रत्नसेन और पद्मावती की प्रसिद्ध हिन्दू लोककथा को आधार बनाया है। जायसी की भाषा बोल-चाल की अवधी का ठेठ रूप है, किन्तु इनकी शैली प्रौढ़ और गंभीर है। जायसी ने अपने काव्य में कई प्रकार के आदर्श प्रस्तुत किए हैं। रत्नसेन सच्चे प्रेम का आदर्श है, गोरा-बादल वीरता के आदर्श हैं, नागमती पतिपरायणा पत्नी का आदर्श है। तुलसीदास के समान किसी एक सर्वांगपूर्ण आदर्श पात्र की प्रतिष्ठा जायसी ने 'पदमावत' में नहीं की है।

जायसी ने दोहा-चौपाई शैली में अपने काव्य की रचना की है। इसी शैली का प्रयोग तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' में भी किया है। सूफ़ी संप्रदाय में दीक्षित होने के कारण जायसी ने अपने काव्य में ईश्वरोन्मुख प्रेम का ही विशेष रूप से वर्णन किया है। उस वर्णन में रहस्य का गहरा पुट है, किन्तु लोकरक्षा और लोकरंजन के प्रतिष्ठित आदर्शों के प्रति भी इनका पूरा रुझान है।

इनके लिखे हुए बारह ग्रंथ बताए जाते हैं, किन्तु अभी तक केवल चार ही उपलब्ध हुए हैं: 'पदमावत', 'अखरावट', 'आख़िरी कलाम' और 'चित्ररेखा।'

जायसी

मानसरोदक खंड

(जायसी ने 'पदमावत' में सिंहलद्वीप की राजकुमारी पद्मावती तथा चित्तौड़ के राजकुमार रत्नसेन के प्रेम और विवाह का वर्णन किया है। पद्मावती अपने रूप और गुणों के लिए प्रसिद्ध थी। एक बार पूर्णिमा के दिन वह अपनी सखियों के साथ स्नान करने के लिए मानसरोवर गई। इस अवतरण में उसी प्रसंग का वर्णन है। कवि ने सखियों के वार्तालाप तथा एक सखी के हार खोने और मिलने का अत्यंत सरस वर्णन किया है। वास्तव में पद्मावती के दर्शन और स्पर्श की अभिलाषा से मानसरोवर ने ही वह हार छिपा लिया था। अतः पद्मावती के प्रवेश करते ही वह हार तुरंत जल के ऊपर आ गया।)

एक दिवस पून्यौ तिथि आई। मानसरोदक चली नहाई॥
पदमावति सब सखी बुलाई। जनु फुलवारि सबै चलि आई॥
खेलत मानसरोवर गईं। जाइ पाल पर ठाढ़ी भईं॥
देखि सरोवर हँसैं कुलेली। पदमावति सौं कहहिं सहेली॥
ए रानी! मन देखु बिचारी। एहि नैहर रहना दिन चारी॥
जौ लगि अहै पिता कर राजू। खेलि लेहु जो खेलहु आजू॥
पुनि सासुर हम गवनब काली। कित हम, कित यह सरवर-पाली॥
कित आवन पुनि अपने हाथा। कित मिलि के खेलब एक साथा॥
सासु ननद बोलिन्ह जिउ लेहीं। दारुन ससुर न निसरै देहीं॥

पिउ पियार सिर ऊपर, पुनि सो करै दहुँ काह।
दहुँ सुख राखै की दुख, दहुँ कस जनम निबाह॥१॥

सरवर तीर पदमिनी आई। खोंपा छोरि केस मुकलाई॥
ससि-मुख, अंग मलयगिरि बासा। नागिन झाँपि लीन्ह चहुँ पासा॥
ओनई घटा परी जग छाहाँ। ससि के सरन लीन्ह जनु राहाँ॥
छपि गै दिनहिं भानु कै दसा। लेइ निसि नखत चाँद परगसा॥
भूलि चकोर दीठि मुख लावा। मेघघटा महँ चंद देखावा॥

सरवर रूप विमोहा, हिये हिलोरहि लेइ।
पाँव छुवै पावौं एहि मिस लहरहि देइ॥२॥

लागीं केलि करै मझ नीरा । हंस लजाइ बैठ ओहि तीरा ।।
पदमावति कौतुक कहँ राखी । तुम ससि होहु तराइन्ह साखी ।।
बाद मेलि कै खेल पसारा । हार देइ जो खेलत हारा ।।
सँवरिहि साँवरि, गोरिहि गोरी । आपनि आपनि लीन्ह सो जोरी ।।
बूझि खेल खेलहु एक साथा । हार न होइ पराए हाथा ।।
आजुहि खेल, बहुरि कित होई । खेल गए कित खेलै कोई ?
धनि सो खेल खेल सह पेमा । रउताई औ कूसल खेमा ?

मुहमद बाजी पेम कै, ज्यों भावै त्यों खेल ।
तिल फूलहि के संग ज्यों, होइ फुलायल तेल ।।३।।

सखी एक तेइ खेल न जाना । भै अचेत मनि-हार गँवाना ।।
कँवल डार गहि भै बेकरारा । कासौं पुकारौं आपन हारा ।।
कित खेलै आइउँ एहि साथा । हार गँवाइ चलिउँ लेइ हाथा ।।
घर पैठत पूँछब यह हारू । कौन उतर पाउब पैसारू ।।
नैन सीप आँसू तस भरे । जानौ मोति गिरहिं सब ढरे ।।
सखिन कहा बौरी कोकिला । कौन पानि जेहि पौन न मिला ? ।।
हार गँवाइ सो ऐसे रोवा । हरि हेराइ लेइ जौं खोवा ।।

लागीं सब मिलि हेरैं, बूड़ि बूड़ि एक साथ ।
कोइ उठी मोती लेइ, काहू घोंघा हाथ ।।४।।

कहा मानसर चाह सो पाई । पारस रूप इहाँ लगि आई ।।
भा निरमल तिन्ह पाँयन्ह परसे । पावा रूप रूप के दरसे ।।
मलय समीर बास तन आई । भा सीतल, गै तपनि बुझाई ।।
न जनौं कौन पौन लेइ आवा । पुन्य-दसा भै पाप गँवावा ।।
ततखन हार बेगि उतिराना । पावा सखिन्ह चंद बिहँसाना ।।
बिगसा कुमुद देखि ससि रेखा । भै तहँ ओप जहाँ जोइ देखा ।।
पावा रूप रूप जस चहा । ससि-मुख जनु दरपन होइ रहा ।।

नयन जो देखा कँवल भा, निरमल नीर सरीर ।
हँसत जो देखा हंस भा, दसन जोति नग हीर ।।५।।

('जायसी-ग्रंथावली' से)

प्रश्न और अभ्यास

१. 'पदमावत' का कथानक किस लोककथा पर आश्रित है ? संक्षेप में लिखिए।

२. पद्मावती के रूप-वर्णन का सांकेतिक अर्थ स्पष्ट कीजिए।

३. पाठ के आधार पर नीचे लिखे उपमानों के उपमेय दीजिए :
सिस, मेघघटा, तराइन्ह, सीप, कुमुद, मोती।

४. निम्नलिखित के भाव स्पष्ट कीजिए:

(क) सरवर रूप विमोहा······मिस लहरहि देइ।

(ख) नयन जो देखा······नग हीर।

(ग) धनि सो खेल खेल······कूसल खेमा ?

५. निम्नलिखित शब्दों के तत्सम रूप लिखिए :
पुहुमी, राहौं, नखत, खेमा, ततखन।

केशवदास

केशवदास मध्यप्रदेश के ओरछा (टीकमगढ़) नामक स्थान के एक ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हुए थे। इनके पिता का नाम काशीनाथ था। सन् १५५५ ई० में इनका जन्म हुआ तथा सन् १६१७ ई० में मृत्यु हुई। इनके कुल में संस्कृत-विद्वानों की परंपरा थी। केशवदास संस्कृत के प्रकांड पंडित थे, फिर भी इन्होंने हिन्दी में ही कविता करना उचित समझा।

केशवदास का ओरछा-नरेश महाराज रामसिंह के अनुज इंद्रजीतसिंह की सभा में बड़ा सम्मान था। वे इन्हें गुरुवत् मानते थे। गुरु-दक्षिणा के रूप में उन्होंने केशव को इक्कीस गाँव प्रदान किए थे। महाराज बीरबल की भी इन पर विशेष कृपा थी। कहते हैं, एक छंद पर प्रसन्न होकर उन्होंने केशवदास को छह लाख रुपए पुरस्कार में दिए थे।

केशव ने अपने ग्रंथों में अलंकार-विधान एवं कला-कौशल को विशेष महत्त्व दिया है। अलंकाररहित काव्य को ये हीन कोटि की रचना मानते थे। केशवदास हिन्दी के प्रथम आचार्यकवि हैं। इन्होंने काव्यशास्त्र के सिद्धांतों का प्रतिपादन करने के लिए **'कविप्रिया'** और **'रसिकप्रिया'** ग्रंथों का प्रणयन किया। **'रामचंद्रिका'** में केशव ने रामकथा का विविध छंदों में वर्णन किया है और उसमें संवाद शैली की प्रमुखता है। राजसी ठाट-बाट और नगर-शोभा के वर्णन में केशव को अच्छी सफलता मिली है। केशव की रचना अपेक्षाकृत क्लिष्ट है, इसलिए उन्हें **'कठिन काव्य का प्रेत'** भी कहा गया है।

केशवदास की भाषा ब्रजभाषा है, जिसमें बुंदेली का गहरा पुट मिलता है। संस्कृत के पंडित होने के कारण इनकी रचनाओं में संस्कृत शब्दों का बाहुल्य है।

केशव-रचित आठ ग्रंथ माने जाते हैं, जिनमें **'रसिकप्रिया'**, **'कविप्रिया'**, **'रामचंद्रिका'** तथा **'विज्ञान गीता'** विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं।

केशवदास

अंगद-रावण-संवाद

(रावण द्वारा सीता के अपहरण का समाचार सुनकर राम ने अंगद को रावण की सभा में यह समझाने के लिए भेजा कि वह बिना युद्ध के ही सीता को लौटा दे। प्रस्तुत पाठ में अंगद और रावण के उसी संवाद का वर्णन है।)

अंगद कूदि गए जहाँ आसनगत लंकेस।
मनु मधुकर करहाट पर सोभित स्यामल बेष ॥१॥

प्रतिहार– पढ़ौ बिरंचि मौन बेद जीव सोर छंडि रे।
कुबेर बेर कै कही न जक्षभीर मंडि रे।
दिनेस जाइ दूरि बैठि नारदादि संगहीं।
न बोलि चंद मंदबुद्धि इंद्र की सभा नहीं ॥२॥
अंगद यों सुन बानी। चित्त महा रिस आनी।
ठेलिकै लोग अनैसे। जाइ सभा महँ बैसे ॥३॥

प्रहस्त– कौन हो पठए, सो कौनेहि, ह्याँ तुम्हें कह काम है ?
अंगद– जाति बानर, लंकनायक दूत, अंगद नाम है।
रावण– कौन है वह बाँधिकै हम देह पूँछि सबै दही।
अंगद– लंक जारि सँघारि अक्ष गयो सो बात बृथा कही ? ॥४॥
महोदर– कौन भाँति रहौ तहाँ तुम ? (**अंगद**—) राजप्रेषक जानिए।
महोदर– लंक लाइ गयो जो बानर कौन नाम बखानिए।
मेघनाद जो बाँधियो वहि मारियो बहुधा तबै।
अंगद– लोकलाज दुर्‌यो रहै अति जानिजै न कहाँ अबै ॥५॥
कौन के सुत ? बालि के, वह कौन बालि न जानिए ?
काँख चाँपि तुम्हें जो सागर सात न्हात बखानिए।
है कहाँ वह ? बीर अंगद देवलोक बताइयो।
क्यों गयो ? रघुनाथ-बान-बिमान बैठि, सिधाइयो ॥६॥
लंकनायक को ? बिभीषन देवदूषन कों दहै।
मोहि जीवत होहि क्यों ? जग तोहि जीवत को कहै।

मोहि को जग मारिहै ? दुरबुद्धि तेरिय जानिए ।
कौन बात पठाइयो कहि बीर बेगि बखानिए ।।७।।

अंगद–

श्रीरघुनाथ को बानर 'केसव' आयो हो एक न काहू ह्यो जू ।
सागर को मद झारि च्चिकारि त्रिकूट की देह बिहारि छ्यो जू ।
सीय निहारि सँहारि कै राकस सोक असोकबनीहि दयो जू ।
अक्षकुमारहि मारिकै लंकहि जारिकै नीकेहिं जात भयो जू ।।८।।

राम राजान के राज आए इहाँ धाम तेरे महाभाग जागे अबै ।
देबि मंदोदरी कुंभकर्नादि दै मित्र मंत्री जिते पूँछि देखौ सबै ।
राखिजै जाति कों पाँति कों बंस कों साधिजै लोक मैं लोक-पर्लोक कों ।
आनिकै पाँ परौ, देसु लै कोषु लै, आसुहीं ईस सीताहि लै ओक कों ।।९।।

रावण–

लोक लोकेस स्यों सोचि ब्रह्मा रचे,
आपनी आपनी सीवँ सो सो रहै ।
चारि बाहैं धरे बिष्नु रक्षा करैं,
बात साँची यहै बेदबानी कहै ।
ताहि भ्रूभंग ही देव देवेस स्यों,
बिष्नु ब्रह्मादि दै रूद्रजू संघरैं ।
ताहि हौं छाँड़िकै पायँ काके परौं,
आजु संसार तौ पायँ मेरे परैं ।।१०।।

राम को काम कहा, रिपु जीतहिं, कौन कबै रिपु जीत्यो कहा ।
बालि बली, छल सों, भृगुनंदन गर्ब ह्र्यो, द्विज दीन महा ।
दीन सु क्यों छिति छत्र हत्यो बिन प्राननि हैहयराज कियो ।
हैहय कौन? वहै बिसर्यो जिन खेलतहीं तुम्हैं बाँधि लियो ।।११।।

अंगद–

सिन्धु तर्यो उनको बनरा तुम पै धनुरेख गई न तरी ।
बाँधोई बाँधत सो न बन्यो उन बारिधि बाँधिकै बाट करी ।
श्रीरघुनाथ-प्रताप की बात तुम्हैं दसकंठ न जानि परी ।
तेलनि तूलनि पूँछि जरी न जरी, जरी लंक जराइ-जरी ।।१२।।

मेघनाद—छाँड़ि दियो हम हौ बनरा वह पूँछि की आगि न लंक जरी।
भीर में अक्ष मर्‌यो चपि बालक बादिहि जाइ प्रसस्ति करी।
ताल बिधे अरु सिन्धु बँध्यो यह चेटक बिक्रम कौन कियो।
बानर को नर को बपुरा पल में सुरनायक बाँधि लियो ॥१३॥

अंगद— चेटक सों धनु भंग कियो प्रभु रावरे को अति जीरन हो।
बान-समेत रहे पचिकै तुम जा सह पै न तज्यो थल हो।
बान सु कौन, बली बलि को सुत वै बलि बावन बाँधि लियो।
वोई सु तौ जिनकी चिर चेरिनि नाच नचाइकै छाँड़ि दियो ॥१४॥

रावण—नील सुखेन हनू उनके नल और सबै कपिपुंज तिहारे।
आठहु आठ दिसा बलि दै अपनो पदु लै, पितु जा लगि मारे।
तोसे सपूतहि जाइकै बालि अपूतन की पदवी पगु धारे।
अंगद संग लै मेरो सबै दल आजुहि क्यों न हतै बपमारे ॥१५॥
जो सुत अपने बाप को बैर न लेइ प्रकास।
तासों जीवत ही मर्‌यो लोग कहैं तजि त्रास ॥१६॥

अंगद— इनको बिलगु न मानिए कहि 'केसव' पल आधु।
पानी पावक पवन प्रभु ज्यों असाधु त्यों साधु ॥१७॥

रावण—उरसि अंगद लाज कछू गहौ। जनकघातक-बात बृथा कहौ।
सहित लक्ष्मन रामहिं संघरौं। सकल बानरराज तुम्हें करौं ॥१८॥

अंगद— सत्रु सब मित्र हम चित्त पहिचानहीं।
दूतबिधि नूत कबहूँ न उर आनहीं।
आप मुख देखि अभिलाष अभिलाषहू।
राखि भुज-सीस तब और कहँ राखहू ॥१९॥

रावण—
मेरी बड़ी भूल कहा कहौं रे। तेरो कह्यो दूत सबै सहौं रे।
वै तौ सबै चाहत तोहि मार्‌यो। मारौं कहा तोहि जो दैवमार्‌यो ॥२०॥

अंगद—
नराच श्रीराम जहीं धरैंगे। असेष माथे कटि भू परैंगे।
सिखा सिवा स्वान गहे तिहारी। फिरैं चहूँ ओर निरै-बिहारी ॥२१॥

रावण—

महामीचु दासी सदा पाइँ धोवै। प्रतीहार ह्वै कै कृपा सूर जोवै।
छपानाथ लीन्हे रहे छत्र जाको। करैगो कहा सत्रु सुग्रीव ताको ॥२२॥
सका मेघमाला सिखी पाककारी। करै कोतवाली महादंडधारी।
पढ़ै बेद ब्रह्मा सदा द्वार जाके। कहा बापुरो सत्रु सुग्रीव ताके ॥२३॥

अंगद—

पेट चढ़्यो पलना पलिका चढ़ि पालकिहू चढ़ि मोह मढ़्यो रे।
चौक चढ़्यो चित्रसारी चढ़्यो गजबाजि चढ़्यो गढ़गर्ब चढ़्यो रे।
ब्योमबिमान चढ़्योई रह्यो कहि 'केसव' सो कबहूँ न पढ़्यो रे।
चेतन नाहि रह्यो चढ़ि चित्त सो चाहत मूढ़ चिताहूँ चढ़्यो रे ॥२४॥

रावण— निकार्‌यो जु भैया लियो राज जाको।
दियो काढ़िकै जू कहा त्रास ताको।
लिए बानराली कहौं बात तोसों।
सु कैसे जुरै राम संग्राम मोसों ॥२५॥

अंगद—

हाथी न साथी न घोरे न चेरे न गाउँ न ठाउँ कुठाउँ बिलैहै।
तात न मात न पुत्र न मित्र न बित्त न तीय कहूँ सँग रैहै।
'केसव' काम के राम बिसारत, और निकाम रे काम न ऐहै।
चेति रे चेति अजौं चित-अंतर अंतकलोक अकेलोई जैहै ॥२६॥

रावण—

डरै गाइबिप्रै अनाथै जो भाजै। परद्रब्य छोड़ै परस्त्रीहि लाजै।
परद्रोह जासों न होवै रतीको। सो कैसें लरै बेष कीन्हें जती को ॥२७॥

गेंद कर्‌यो मैं खेल को, हरगिरि 'केसवदास'।
सीस चढ़ाए आपने, कमल-समान सहास ॥२८॥

अंगद—जैसो तुम कहत उठायो एक गिरिबर,
ऐसे कोटि कपिन के बालक उठावहीं।
काटे जो कहत सीस काटत घनेरे घाघ,
मागर के खेले कहा भट-पद पावहीं।

जीत्यो जु सुरेस रन साप रिषिनारि ही को,
समझहु हम द्विज-नातें समुझावहीं।
गहौ रामपाइ सुख पाइ करैं तपी तप,
सीताजू कों देहि, देव दुंदुभी बजावहीं।।२९।।

रावण—
तपी जपी बिप्रन क्षिप्रहीं हरौं। अदेवद्वेषी सब देव संहरौं।
सिया न देहौं यह नेम जी धरौं। अमानुषी भूमि अबानरी करौं।।३०।।

अंगद—
पाहन तें पतिनी करि पावन टूक कियो धनु द्वै हर को रे।
छत्रबिहीन करी छन में छिति गर्ब हत्यो तिनके बर को रे।
पर्बतपुंज पुरैन के पात समान तरे अजहूँ धरको रे।
होइँ नरायनहूँ पै न ये गुन कौन इहाँ नर बानर को रे।।३१।।

रावण—देहिं अंगद राज तोकहँ मारि बानरराज कों।
बाँधि देहिं विभीषनै अरु फोरि सेतु-समाज कों।
पूँछि जारहिं अक्षरिपु की पाइँ लागहिं रुद्र के।
सीय कों तब देहुँ रामहिं पार जाइँ समुद्र के।।३२।।

अंगद—लंक लाइ गयो बली हनुमंत संतन गाइयो।
सिन्धु बाँधत सोधिकै नल छीरछीट बहाइयो।
ताहि तोहि समेत अंध उखारि हौं उलटी करौं।
आजु राज कहाँ बिभीषन बैठिहैं तेहि तैं डरौं।।३३।।

अंगद रावन को मुकुट, लै करि उड़्यो सुजान।
मनो चल्यो जमलोक कों, दससिर को प्रस्थान।।३४।।

('केशव-ग्रंथावली' से)

प्रश्न और अभ्यास

१. रावण ने अपने प्रताप का किस प्रकार वर्णन किया ? अंगद ने उसको क्या उत्तर दिया ?

२. रावण ने सीता को लौटाने के लिए अंगद के सामने क्या शर्तें रखीं ?

३. निम्नलिखित अवतरणों का आशय स्पष्ट कीजिए :

(क) **गेंद कर्‌यो में······सहास।**

(ख) **राम राजान के······ओक कों।**

(ग) **नील सुखेन······हतै बपमारे।**

(घ) **हाथी न साथी······अकेलोई जैहै।**

४. नीचे लिखे पद्यांशों में निहित अंतःकथाएँ लिखिए :

(क) **काँख चाँपि तुम्हैं जो सागर सात न्हात बखानिए।**

(ख) **ताल बिधे अरु सिन्धु बँध्यो यह चेटक विक्रम कौन कियो।**

(ग) **बोई सु तौ जिनको चिर चेरिनि नाच नचाइकै छाँड़ि दियो।**

(घ) **पाहन तें पतिनी करि पावन टूक कियो धनु द्वै हर को रे।**

५. **'मन-मधुकर करहाट .....'** तथा **'पर्बतपुंज पुरैन के पात .....'** पद्यों में प्रयुक्त अलंकारों को स्पष्ट कीजिए।

६. नीचे लिखे शब्दों के अर्थ बताइए :

करहाट, अनैसे, छपानाथ, चेटक, नराच तथा **सर्को**

बिहारीलाल

बिहारी का जन्म अनुमानतः सन् १६०० ई० में ग्वालियर के निकट बसुआ गोविन्दपुर गाँव में हुआ था। इनका बचपन बुंदेलखंड में बीता। तरुणावस्था में ये मथुरा चले आए और यहीं साहित्य तथा संगीत के प्रति इनके मन में अनुराग उत्पन्न हुआ। बिहारी की कविता की ख्याति दूर-दूर तक फैलने लगी। इनकी प्रतिभा से प्रसन्न होकर मुग़ल सम्राट शाहजहाँ ने इन्हें अपने दरबार में आमंत्रित किया। आगरे में कुछ दिन रहकर ये आमेर के मिर्ज़ा राजा जयसिंह के दरबार में चले गए। वहीं इन्होंने **'सतसई'** की रचना की। राजा जयसिंह कविवर बिहारी का बहुत सम्मान करते थे। प्रसिद्ध है कि राजा जयसिंह ने प्रत्येक दोहे पर इन्हें एक स्वर्ण-मुद्रा भेंट की थी। सन् १६६३ ई० में इनका देहांत हो गया।

कविवर बिहारी की गणना रीतिकाल के सर्वश्रेष्ठ कवियों में की जाती है। एक ही ग्रंथ **'सतसई'** ने इनका नाम अमर कर दिया है। श्रृंगार, प्रेम और सौन्दर्य की विविध और सजीव झाँकियाँ उसमें मिलती हैं। रस, अलंकार आदि का रीति-ग्रंथ न होने पर भी बिहारी-सतसई में इनके सुंदर उदाहरण भरे पड़े हैं। इसी कारण बिहारी को रीति-कवियों की श्रेणी में रखा गया है।

'सतसई' मुक्तक काव्य-ग्रंथ है, जिसमें प्रत्येक दोहे का स्वतंत्र विषय है। दोहा जैसे छोटे-से छंद में इन्होंने दृश्य जगत और भाव-जगत के बड़े जीते-जागते शब्द-चित्र अंकित किए हैं। थोड़े-से शब्दों में समास-शैली द्वारा बिहारी ने इतने अधिक भाव भर दिए हैं कि **गागर में सागर** भर देने की उक्ति इनके संबंध में पूर्णतया चरितार्थ होती है। **'सतसई'** में ब्रजभाषा की मधुरता और सरसता देखते ही बनती है।

प्रेम, सौन्दर्य और प्रकृति के अतिरिक्त बिहारी ने भक्ति और नीति के दोहे भी लिखे हैं। इनकी अन्योक्तियाँ भी बड़ी मार्मिक हैं। प्रस्तुत पाठ में इन विषयों से संबंधित इनके कुछ उत्कृष्ट दोहे संकलित हैं।

बिहारीलाल

दोहे

भक्ति

मेरी भव-बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँईं परैं स्यामु हरित-दुति होइ ॥१॥

जगतु जनायौ जिहिं सकलु, सो हरि जान्यौ नाँहि।
ज्यौं आँखिनु सबु देखिए, आँखि न देखी जाँहि ॥२॥

मोहन-मूरति स्याम की, अति अदभुत गति जोइ।
बसतु सु चित-अंतर, तऊ प्रतिबिम्बितु जग होइ ॥३॥

या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहिं कोइ।
ज्यौं ज्यौं बूड़ै स्याम रँग, त्यौं त्यौं उज्जलु होइ ॥४॥

कीनैं हूँ कोरिक जतन अब कहि काढ़ै कौनु।
भो मन मोहन-रूप मिलि पानी मैं कौ लौनु ॥५॥

कोऊ कोरिक संग्रहौ, कोऊ लाख हजार।
मो संपति जदुपति सदा, बिपति-बिदारनहार ॥६॥

भजन कह्यौ, तातैं भज्यौ; भज्यौ न एकौ बार।
दूरि भजन जातैं कह्यौ, सो तैं भज्यौ, गँवार ॥७॥

तौ लगु या मन-सदन मैं, हरि आवैं किहिं बाट।
बिकट जटे जौ लगु निपट, खुटैं न कपट-कपाट ॥८॥

अन्योक्ति

नहिं पावसु, ऋतुराजु यह, तजि, तरवर, चित-भूल।
अपतु भएँ बिनु पाइहै क्यौं नव दल, फल, फूल ॥९॥

जिन दिन देखे वे कुसुम, गई सु बीति बहार।
अब, अलि, रही गुलाब मैं, अपत, कँटीली डार ॥१०॥

इहीं आस अटक्यौ रहतु, अलि गुलाब कैं मूल ।
ह्वैहैं फेरि बसंत ऋतु, इन डारनु वे फूल ॥११॥

को छूट्यौ इहिं जाल परि; कत, कुरंग; अकुलात ।
ज्यौं ज्यौं सुरझि भज्यौ चहत, त्यौं त्यौं उरझत जात ॥१२॥

चितु दै देखि चकोर-त्यौं, तीजैं भजै न भूख ।
चिनगी चुगै अँगार की, चुगै कि चंद-मयूख ॥१३॥

स्वारथु, सुकृत न, श्रमु बृथा; देखि बिहंग, बिचारि ।
बाज, पराऐं पानि परि तूँ पच्छीनु न मारि ॥१४॥

नीति

दीरघ साँस न लेहु दुख, सुख साईं हिं न भूलि ।
दई दई क्यौं करतु है, दई दई सु कबूलि ॥१५॥

बड़े न हूजै गुननु बिनु, बिरद-बड़ाई पाइ ।
कहत धतूरे सौं कनकु, गहनौ गढ़्यौ न जाइ ॥१६॥

नर की अरु नल-नीर की, गति एकै करि जोइ ।
जेतौ नीचौ ह्वै चलै, तेतौ ऊँचौ होइ ॥१७॥

बढ़त बढ़त संपति-सलिलु मन-सरोजु बढ़ि जाइ ।
घटत घटत सु न फिरि घटै, बरु समूल कुम्हिलाइ ॥१८॥

दुसह दुराज प्रजानु कौं क्यौं न बढ़ै दुख-दंदु ।
अधिक अँधेरौ जग करत, मिलि मावस रबि-चंदु ॥१९॥

कहै यहै श्रुति सुम्रत्यौ, यहै सयाने लोग ।
तीन दबावत निसकहीं पातक, राजा, रोग ॥२०॥

बिषम वृषादित की तृषा जिए मतीरनु सोधि ।
अमित, अपार, अगाध-जलु मारौ मूड़ पयोधि ॥२१॥

जौ चाहत, चटक न घटै, मैलो होइ न, मित्त ।
रज राजसु न छुवाइ तौ नेह-चीकनौ चित्त ॥२२॥

चटक न छाँड़तु घटत हूँ सज्जन-नेहु गँभीरु ।
फीकौ परै न, बरु फटै, रँग्यो चोल-रँग चीरु ॥२३॥

समै समै सुंदर सबै, रूपु कुरूपु न कोइ ।
मन की रुचि जेती जितै, तित तेती रुचि होइ ॥२४॥

जद्यपि सुंदर, सुघर, पुनि सगुनौ दीपक-देह ।
तऊ प्रकासु करै तितौ, भरियै जितैं सनेह ॥२५॥

गिरि तैं ऊँचे रसिक-मन, बूड़े जहाँ हजारु ।
वहै सदा पसु नरनु कौं, प्रेम-पयोधि पगारु ॥२६॥

घरु घरु डोलत दीन ह्वै, जनु जनु जाचतु जाइ ।
दियैं लोभ-चसमा चखनु, लघु पुनि बड़ौ लखाइ ॥२७॥

प्रकृति

छकि रसाल-सौरभ सने, मधुर माधुरी-गंध ।
ठौर ठौर झौंरत झँपत, भौंर-झौंर मधु अंध ॥२८॥

रनित भृंग-घंटावली, झरित दान मधु-नीरु ।
मंद मंद आवतु चल्यौ, कुंजरु कुंज-समीरु ॥२९॥

चुवतु स्वेद मकरंद-कन, तरु-तरु-तर बिरमाइ ।
आवतु दच्छिन देस तैं, थक्यौ बटोही बाइ ॥३०॥

रुक्यौ साँकरैं कुंज-मग, करतु झाँझि, झकुरातु ।
मंद मंद मारुत-तुरँगु, खूँदतु आवतु जातु ॥३१॥

सघनकुंज-छाया सुखद, सीतल सुरभि-समीर ।
मनु ह्वै जातु अजौं वहै, उहि जमुना के तीर ॥३२॥

बैठि रही अति सघन बन, पैठि सदन-तन माँह ।
देखि दुपहरी जेठ की, छाँहौं चाहति छाँह ॥३३॥

कहलाने एकत बसत, अहि मयूर, मृग बाघ ।
जगतु तपोबन सौ कियौ, दीरघ-दाघ निदाघ ॥३४॥

सौन्दर्य और प्रेम

सोहत ओढ़ैं पीतु पटु, स्याम, सलौनैं गात।
मनौ नीलमनि-सैल पर, आतपु परयौ प्रभात ।।३५।।

जहाँ जहाँ ठाढ़ौ लख्यौ, स्याम सुभग-सिरमौरु।
बिन हूँ उन छिनु गहि रहतु, दृगनु अजौं वह ठौरु ।।३६।।

अधर धरत हरि कैं, परत ओठ-डीठि-पट-जोति।
हरित बाँस की बाँसुरी, इंद्रधनुष-रँग होति ।।३७।।

इन दुखिया अँखियानु कौं, सुखु सिरज्यौई नाँहि।
देखैं बनैं न देखतैं, अनदेखैं अकुलाँहि ।।३८।।

लिखन बैठि जाकी सबी, गहि गहि गरब गरूर।
भए न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर ।।३९।।

हरि-छबि-जल जब तैं परे, तब तैं छिनु बिछुरैं न।
भरत ढरत, बूड़त तरत, रहत घरी लौं नैन ।।४०।।

('बिहारी-रत्नाकर' से)

प्रश्न और अभ्यास

१. निम्नांकित अंशों का भाव-सौन्दर्य स्पष्ट कीजिए :

(क) **बिन हूँ उन छिन गहि रहतु, दृगनु अजौं वह ठौरु।**

(ख) **देखि दुपहरी जेठ की, छाँहौं चाहति छाँह।**

२. कुछ दोहों का सारांश नीचे दिया हुआ है। उनसे संबंधित दोहे लिखिए :

(क) **हर्ष-विषाद में समान रहना चाहिए।**

(ख) **नम्रता से ही बड़प्पन मिलता है।**

(ग) **दोहरे राज्य में प्रजा दुःखी रहती है।**

(घ) **सज्जन का स्नेह स्थायी होता है।**

३. बिहारी के दोहों के आधार पर निम्नांकित अधूरे वाक्यों को पूरा करके लिखिए :

(क) **दो राजाओं द्वारा शासित प्रजा के कष्ट इसी प्रकार बढ़ जाते हैं जिस प्रकार······**

(ख) जिस भगवान ने हमें सारे संसार का ज्ञान कराया है उसे हम वैसे ही नहीं जान पाते हैं जैसे······

अन्योक्ति किसे कहते हैं ? इस पाठ के दोहों में **कुरंग**, **अलि**, **बाज** तथा **तरुवर** से संबंधित अन्योक्तियाँ किनको लक्ष्य करके कही गई हैं ?

आठवें दोहे में रूपक अलंकार है जिसमें **'मन'** और **'कपट'** प्रस्तुत हैं और **'सदन'** और **'कपाट'** क्रमशः उनके अप्रस्तुत हैं। इसी प्रकार दोहा संख्या २२ और २९ में आए हुए निम्नांकित प्रस्तुतों के अप्रस्तुत लिखिए :

राजसु, समीर, भृंग, मधु।

भूषण

कविवर भूषण कानपुर (उत्तरप्रदेश) ज़िले के तिकवाँपुर गाँव के निवासी पंडित रत्नाकर त्रिपाठी के पुत्र थे। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि चिन्तामणि और मतिराम इनके भाई कहे जाते हैं। भूषण का जन्म सन् १६१३ ई० में तथा मृत्यु सन् १७१५ ई० के लगभग स्वीकार की जाती है। भूषण इनकी उपाधि थी, जो इन्हें चित्रकूट के सोलंकी राजा रुद्र से मिली थी।

भूषण अनेक राजाओं के आश्रय में रहे, किन्तु इनके मनोनुकूल आश्रयदाता दो ही थे—महाराज शिवाजी और वीरकेसरी छत्रसाल। दोनों ने इनका बहुत सम्मान किया। किंवदंती है कि ये जब विदा होने लगे तो महाराज छत्रसाल ने इनकी पालकी में कंधा लगाया था। इस सम्मान से प्रसन्न होकर इन्होंने कहा था—

'सिवा को बखानौं कै बखानौं छत्रसाल को'

छत्रपति शिवाजी एवं छत्रसाल का शौर्य-वर्णन भूषण की कविता का मुख्य विषय है। शिवाजी की युद्धवीरता, दानशीलता, दयालुता एवं धर्मपरायणता का कवि ने विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। वीर रस की जैसी प्रबल व्यंजना इनके काव्य में मिलती है, वैसी हिन्दी में अन्यत्र दुर्लभ है। इनके दोनों चरितनायक वीर योद्धा एवं लोक-रक्षक नेता थे। उनके शौर्यपूर्ण कृत्य वस्तुतः प्रशंसनीय थे। हिन्दुत्व के रक्षकों का गुणगान करने पर भी भूषण को राष्ट्रीय कवि ही मानना चाहिए, क्योंकि इनके समय में राष्ट्रीयता और जातीयता अभिन्न थीं।

भूषण की कविता ब्रजभाषा में है। इनके द्वारा उस काल में ब्रजभाषा में माधुर्य के स्थान पर ओज का समावेश हुआ। यद्यपि भूषण ने बहुत-से विदेशी शब्दों का प्रयोग किया है, शब्दों को तोड़ा-मरोड़ा भी बहुत है, व्याकरण का उल्लंघन भी अनेक स्थलों पर किया है, फिर भी इनकी भाषा में वीर-भावनाओं को उद्‌बुद्ध करने की अद्‌भुत शक्ति है। रीतिकालीन कवियों ने मुख्यरूप से शृंगार रस को ही स्वीकार किया था, किन्तु भूषण ने वीर रस को अपनी कविता का मुख्य विषय बनाकर रीतिकाल में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है।

भूषण-रचित तीन काव्य-ग्रंथ प्राप्त हैं—**'शिवराजभूषण'**, **'शिवा-बावनी'** और **'छत्रसाल दशक'**।

भूषण

कवित्त तथा सवैये

साजि चतुरंग-सैन अंग मैं उमंग धारि,
सरजा सिवाजी जंग जीतन चलत है।
भूषन भनत नाद-बिहद नगारन के,
नदी-नद मद गैबरन के रलत है।।
ऐल-फैल खैल-भैल खलक मैं गैल-गैल,
गजन की ठैल-पैल सैल उसलत है।
तारा सो तरनि धूरि-धारा मैं लगत जिमि,
थारा पर पारा पारावार यों हलत है।।१।।

छूटत कमान बान बंदूकरु कोकबान,
मुसकिल होत मुरचानहू की ओट मैं।
ताही समै सिवराज हुकुम कै हल्ला कियो,
दावा बाँधि द्वेषिन पै बीरन लै जोट मैं।।
भूषन भनत तेरी हिम्मति कहाँ लौं कहौं,
किम्मति इहाँ लगि है जाकी भट-झोट मैं।
ताव दै-दै मूँछन कगूँरन पै पाँव दै-दै,
घाव दै-दै अरि-मुख कूद परैं कोट मैं।।२।।

पावक-तुल्य अमीतन को भयो मीतन को भयो धाम सुधा को।
आनंद भो गहिरो समुदै कुमुदावलि तारन को बहुधा को।।
भूतल माहिं बली सिवराज भो भूषन भाखत सत्रु मुधा को।
बंदन तेज त्यों चंदन कीरति सोंधे सिंगार बधू बसुधा को।।३।।

इंद्र निज हेरत फिरत गज-इंद्र अरु,
इंद्र को अनुज हेरै दुगध-नदीस को।
भूषन भनत सुरसरिता को हंस हेरै,
बिधि हेरै हंस को चकोर रजनीस को।।

साहितनै सरजा यों करनी करी है तैं नै,
होत है अचंभो देव कोटियो तैंतीस को।
पावत न हेरे तेरे जस मैं हिराने, निज
गिरि को गिरीस हेरैं गिरिजा गिरीस को ॥४॥

बासव-से बिसरत बिक्रम की कहा चली,
बिक्रम लखत बीर बखत-बलंद के।
जागे तेज-बृंद सिवाजी नरिन्द मसनंद,
माल-मकरंद कुलचंद साहिनंद के॥
भूषन भनत देस-देस बैरि-नारिन मैं,
होत अचरज घर-घर दुख-दंद के।
कनकलतानि इंदु, इंदु माँहि अरबिन्द,
झरैं अरबिन्दन तें बुंद मकरंद के॥५॥

भुज-भुजगेस की बै संगिनी भुजंगिनी-सी,
खेदि खेदि खाती दीह दारुन दलन के।
बखतर पाखरन बीच धँसि जाति, मीन
पैरि पार जात परबाह ज्यों जलन के॥
रैयाराव चंपति के छत्रसाल महाराज,
भूषन सकै करि बखान को बलन के।
पच्छी परछीने ऐसे परे परछीने बीर,
तेरी बरछी ने बर छीने हैं खलन के॥६॥

निकसत म्यान तें मयूखैं प्रलै-भानु कैसी,
फारैं तम तोम-से गयंदन के जाल को।
लागति लपकि कंठ बैरिन के नागिन-सी,
रुद्रहिं रिझावै दै दै मुंडन की माल को॥
लाल छितिपाल छत्रसाल महाबाहु बली,
कहाँ लौं बखान करौं तेरी करवाल को।

प्रतिभट-कटक कटीले केते काटि काटि,
कालिका-सी किलकि कलेऊ देति काल को ।।७।।

('भूषण-ग्रंथावली' से)

प्रश्न और अभ्यास

१. भूषण ने किन राजाओं के शौर्य का वर्णन किया है ? उनके संक्षिप्त परिचय दीजिए।
२. शिवाजी के अभियान का वर्णन कीजिए।
३. गजेन्द्र, क्षीरसागर तथा चंद्रमा कहाँ खो गए ? उनके लुप्त होने का क्या आशय है ?
४. छत्रसाल की बरछी का वर्णन अपने शब्दों में कीजिए।
५. निम्नलिखित अवतरणों का भाव स्पष्ट कीजिए :
   (क) बंदन तेज त्यों······बसुधा को ।
   (ख) कनकलतानि······मकरंद के ।
   (ग) पच्छी परछीने······खलन के ।
६. अलंकार बताइए :
   (अ) पावक-तुल्य अमीतन······।
   (ब) तम-तोम······जाल को ।
   (स) बरछी ने बर छीने ।
७. भूषण की कविता में किस प्रमुख भाव का चित्रण हुआ है ? इस भाव को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने किस भाषा-शैली का प्रयोग किया है ?

भारतेन्दु हरिश्चंद्र

वाराणसी के एक संपन्न वैश्य परिवार में सन् १८५० ई० में भारतेन्दु हरिश्चंद्र का जन्म हुआ था। इनके पिता बाबू गोपालचंद्र ब्रजभाषा के अच्छे कवि थे। कवित्वशक्ति भारतेन्दु को पैतृक संपत्ति के रूप में मिली थी। इनका निधन पैंतीस वर्ष की अल्पायु में सन् १८८५ ई० में हो गया।

भारतेन्दु की प्रतिभा बहुमुखी थी। अपने अल्पकालीन जीवन में इन्होंने साहित्य के सभी अंगों को समृद्ध किया। काव्य में इन्होंने नूतन आदर्शों की स्थापना की। हिन्दी-नाटक, कथा-साहित्य तथा पत्र-पत्रिकाओं के क्षेत्र में तो इन्होंने युग-प्रवर्तक का कार्य किया। अतएव साहित्य के इतिहास में इनके काल को भारतेन्दु-युग के नाम से अभिहित किया गया है।

इनका काव्य-क्षेत्र व्यापक एवं वैविध्यपूर्ण है। एक ओर तो इन्होंने भक्ति तथा शृंगार की ऐसी सरस और मार्मिक कविताएँ लिखीं जो भक्ति एवं रीतिकाल के सिद्धहस्त कवियों की याद दिलाती हैं, दूसरी ओर देश-प्रेम, भाषा-प्रेम तथा समाज-सुधार संबंधी काव्य का प्रणयन किया जिससे नवीन युग का श्रीगणेश हुआ। प्राचीन और नवीन का ऐसा सुंदर सम्मिलन बहुत कम कवियों में मिलेगा।

भारतेन्दु के विचार प्रगतिशील थे। इनके मन में विदेशी शासन के प्रति आंतरिक क्षोभ था, जिसे इन्होंने कई रूपों में व्यक्त किया है। भारतेन्दु हरिश्चंद्र स्वदेश, स्वजाति और स्वभाषा पर बड़ा गर्व करते थे।

इनका अधिकांश काव्य ब्रजभाषा में है। ब्रजभाषा का सहज-प्रसन्न रूप ही इनके काव्य में गृहीत हुआ है। जो शब्द पुराने पड़ गए थे उनका इन्होंने बहिष्कार किया। लोकोक्तियों और मुहावरों का भी इन्होंने समुचित प्रयोग किया है।

भारतेन्दु की प्रसिद्ध काव्य-रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं—**'प्रेम-माधुरी', 'प्रेम-फुलवारी', 'प्रबोधिनी', 'प्रेम-सरोवर', 'भक्तमाल', 'सतसई शृंगार', 'विनय-प्रेम पचासा'** आदि। इनके समस्त ग्रंथ **'भारतेन्दु-ग्रंथावली'** में संकलित हैं।

भारतेन्दु हरिश्चंद्र

यमुना-छवि

तरनि-तनूजा-तट तमाल तरुवर बहु छाए।
झुके कूल सों जल-परसन-हित मनहुँ सुहाए।।
किधौं मुकुर में लखत उझकि सब निज-निज सोभा।
कै प्रनवत जल जानि परम पावन फल लोभा।।
मनु आतप बारन तीर कों, सिमिटि सबै छाए रहत।
कै हरि-सेवा-हित नै रहे, निरखि नैन मन सुख लहत।।

कहूँ तीर पर कमल अमल सोभित बहु भाँतिन।
कहुँ सैवालन मध्य कुमुदिनी लगि रहि पाँतिन।।
मनु दृग धारि अनेक जमुन निरखत ब्रज सोभा।
कै उमगे पिय-प्रिया-प्रेम के अनगिन गोभा।।
कै करिकै कर बहु पीय कों टेरत निज ढिग सोहई।
कै पूजन को उपचार लै चलति मिलन मन मोहई।।

तिन पें जेहि छिन चंद-जोति राका निसि आवति।
जल में मिलिकै नभ अवनी लौं तान तनावति।।
होत मुकुरमय सबै तबै उज्जल इक ओभा।
तन मन नैन जुड़ात देखि सुंदर सो सोभा।।
सो को कबि जो छबि कहि सकै, ता छन जमुना नीर की।
मिलि अवनि और अंबर रहत, छबि इसकी नभ तीर की।।

परत चंद्र-प्रतिबिम्ब कहूँ जल मधि चमकायो।
लोल लहर लहि नचत कबहुँ सोई मन भायो।।
मनु हरि - दरसन हेत चंद जल बसत सुहायो।
कै तरंग कर मुकुर लिए सोभित छबि छायो।।
कै रास-रमन मैं हरि-मुकुट-आभा जल दिखरात है।
कै जल-उर हरि-मूरति बसति ता प्रतिबिम्ब लखात है।।

कबहुँ होत सत चंद कबहुँ प्रगटत दुरि भाजत ।
पवन गवन बस बिम्ब रूप जल में बहु साजत ॥
मनु ससि भरि अनुराग जमुनजल लोटत डोलै ।
कै तरंग की डोर हिंडोरन करत कलोलै ॥
कै बालगुड़ी नभ में उड़ी सोहत इत-उत धावती ।
कै अवगाहत डोलत कोऊ ब्रजरमनी जल आवती ॥

मनु जुग पच्छ प्रतच्छ होत मिटि जात जमुन जल ।
कै तारागन ठगन लुकत प्रगटत ससि अविकल ॥
कै कालिन्दी नीर तरंग जितो उपजावत ।
तितनो ही धरि रूप मिलन हित तासों धावत ॥
कै बहुत रजत चकई चलत, कै फुहार जल उच्छरत ।
कै निसिपति मल्ल अनेक बिधि, उठि बैठत कसरत करत ॥

कूजत कहुँ कलहंस कहूँ मज्जत पारावत ।
कहुँ कारंडव उड़त कहूँ जलकुक्कुट धावत ॥
चक्रवाक कहुँ बसत कहूँ बक ध्यान लगावत ।
सुक पिक जल कहुँ पियत कहूँ भ्रमरावलि गावत ॥
कहुँ तट पर नाचत मोर बहु रोर बिबिध पच्छी करत ।
जलपान न्हान करि सुख भरे तट सोभा सब जिय धरत ॥

कहूँ बालुका बिमल सकल कोमल बहु छाई ।
उज्जल झलकत रजत सिढ़ी मनु सरस सुहाई ॥
पिय के आगम हेत पाँवड़े मनहुँ बिछाए ।
रत्नरासि करि चूर कूल में मनु बगराए ॥
मनु मुक्त माँग सोभित भरी श्यामनीर चिकुरन परसि ।
सतगुन छायो कै तीर में ब्रज निवास लखि हिय हरसि ॥

('भारतेन्दु-ग्रंथावली' से)

प्रेम-माधुरी

इन दुखियान को न चैन सपनेहूँ मिल्यौ,
तासों सदा ब्याकुल बिकट अकुलायँगी।
प्यारे 'हरिचंद जू' की बीती जानि औध, प्रान
चाहते चले पै ये तो संग ना समायँगी॥
देख्यो एक बारहू न नैन भरि तोहिं यातें,
जौन जौन लोक जैहैं तहाँ पछतायँगी।
बिना प्रान-प्यारे भए दरस तुम्हारे, हाय!
मरेहू पै आँखें ये खुली ही रहि जायँगी॥१॥

कूकै लगीं कोइलैं कदंबन पै बैठि फेरि
धोए धोए पात हिलि-हिलि सरसै लगे।
बोलै लगे दादुर मयूर लगे नाचै फेरि
देखि के सँजोगी-जन-हिय हरसै लगे॥
हरी भई भूमि सीरी पवन चलन लागी
लखि 'हरिचंद' फेर प्रान तरसै लगे।
फेरि झूमि-झूमि बरषा की ऋतु आई फेरि
बादर निगोरे झुकि-झुकि बरसै लगे॥२॥

('भारतेन्दु-ग्रंथावली' से)

भारत जय

चलहु बीर उठि तुरत सबै जय-ध्वजहि उड़ाओ।
लेहु म्यान सों खड्ग खींचि रनरंग जमाओ॥
परिकर कसि कटि उठो धनुषि पै धरि सर साधौ।
केसरिया बानो सजि सजि रनकंकन बाँधौ॥
जौ आरजगन एक होइ निज रूप सम्हारैं।
तजि गृहकलहहिं अपनी कुल-मरजाद बिचारैं॥

तौ ये कितने नीच कहा इनको बल भारी।
सिंह अगे कहुँ स्वान ठहरिहैं समर मँझारी ।।

चिउँटिहु पदतल दबे डसत ह्वै तुच्छ जंतु इक।
ये प्रतच्छ अरि इनहिं उपेछै जौन ताहि धिक ।।

उठहु बीर तरवार खींचि मारहु घन संगर।
लोह-लेखिनी लिखहु आर्य-बल सत्रु-हृदय पर ।।

मारू बाजे बजें कहौ धौंसा घहराहीं।
उड़हिं पताका सत्रुहृदय लखि-लखि थहराहीं ।।

चारन बोलहिं आर्य-सुजस बंदी गुन गावैं।
छुटहिं तोप घनघोर सबै बंदूक चलावैं ।।

चमकहिं असि भाले दमकहिं ठनकहिं तन बखतर।
हींसहिं हय झनकहिं रथ गज चिक्करहिं समर थर ।।

छन महँ नासहिं आर्य नीच सत्रुन कहँ करि छय।
कहहु सबै भारत जय भारत जय भारत जय ।।

('भारतेन्दु-ग्रंथावली' से)

प्रश्न और अभ्यास

१. यमुना को **'तरनि-तनूजा'** क्यों कहा गया है ? यमुना-तट की शोभा का अपने शब्दों में वर्णन कीजिए।
२. यमुना के तट पर तमाल-वृक्षों के झुकने के किन कारणों की कवि ने कल्पना की है ?
३. **'यमुना-छवि'** कविता से उत्प्रेक्षा अलंकार के चार उदाहरण चुनकर उनका सौन्दर्य स्पष्ट कीजिए।
४. **'प्रेम-माधुरी'** कविता के कवित्त संख्या २ के आधार पर वर्षा ऋतु का वर्णन कीजिए।
५. **'भारत जय'** कविता में राष्ट्र की सफलता के लिए किन बातों को आवश्यक बताया गया है ?

६. निम्नांकित अवतरणों का भाव स्पष्ट कीजिए :

(क) कै कालिन्दी नीर तरंग जितो उपजावत······मिलनहित तासों धावत ।

(ख) मनु मुक्त माँग सोभित भरी······लखि हिय हरसि ।

(ग) परत चंद्र······प्रतिबिम्ब लखात है ।

(घ) इन दुखियान को······खुली ही रहि जायँगी ।

(ङ) लोह-लेखिनी······हृदय पर ।

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

अयोध्यासिंह उपाध्याय का जन्म सन् १८६५ ई० में निज़ामाबाद, ज़िला आज़मगढ़ (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। इनके पिता का नाम पंडित भोलासिंह था। नार्मल परीक्षा पास करके ये निज़ामाबाद के मिडिल स्कूल में अध्यापक हुए; उसके पश्चात् कानूनगो नियुक्त हुए। इन्होंने उर्दू, फ़ारसी एवं संस्कृत का ज्ञान घर पर ही प्राप्त किया। सरकारी नौकरी से अवकाश ग्रहण करने पर ये हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी में दीर्घकाल तक अवैतनिक अध्यापक रहे। सन् १९४५ ई० में इनका देहांत हुआ।

'हरिऔध' आधुनिक युग के मूर्धन्य कवि हैं। इन्होंने खड़ीबोली के काव्य को भाषा, भाव, छंद और अभिव्यंजना की दृष्टि से नया रूप प्रदान किया। **'प्रिय-प्रवास'** इनका सर्वप्रथम श्रेष्ठ महाकाव्य है। इसमें कृष्ण को अवतार के रूप में चित्रित न कर लोकनायक के रूप में प्रस्तुत किया गया है और राधा का चरित्र-चित्रण भी उन्हीं के अनुरूप हुआ है।

'हरिऔध' का ब्रजभाषा और खड़ीबोली दोनों पर समान अधिकार था। **'रसकलस'** ब्रजभाषा की रचना है जिसका भाव, भाषा और शास्त्र तीनों की ही दृष्टि से हिन्दी-साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान है। इनके काव्यों में एक ओर तो सरल हिन्दी का सहज सौन्दर्य है और दूसरी ओर संस्कृत की समासयुक्त पदावली की छटा; किसी काव्य में मुहावरों और बोलचाल के शब्दों की झड़ी लगी है तो दूसरे काव्य में भाषा सर्वथा समासबहुला एवं अलंकृत हो गई है। 'हरिऔध' को हिन्दी तथा संस्कृत के छंदों के प्रयोग में समान सफलता मिली है। कवि के अतिरिक्त 'हरिऔध' समर्थ आलोचक और गद्य-लेखक भी थे। इन्होंने हिन्दी-साहित्य का इतिहास भी लिखा है।

'हरिऔध' जी की प्रमुख काव्य-कृतियाँ हैं—**'प्रियप्रवास'**, **'वैदेही वनवास'**, **'रसकलस'**, **'चोखे चौपदे'**, **'बोलचाल'** और **'पारिजात'**।

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

कर्मवीर

देख कर बाधा विविध, बहु विघ्न घबराते नहीं।
रह भरोसे भाग के दुख भोग पछताते नहीं ॥
काम कितना ही कठिन हो किन्तु उकताते नहीं।
भीड़ में चंचल बने जो वीर दिखलाते नहीं ॥
हो गए एक आन में उनके बुरे दिन भी भले।
सब जगह सब काल में वे ही मिले फूले फले ॥१॥

व्योम को छूते हुए दुर्गम पहाड़ों के शिखर।
वे घने जंगल जहाँ रहता है तम आठों पहर ॥
गर्जते जल-राशि की उठती हुई ऊँची लहर।
आग की भयदायिनी फैली दिशाओं में लवर ॥
ये कँपा सकतीं कभी जिसके कलेजे को नहीं।
भूलकर भी वह नहीं नाकाम रहता है कहीं ॥२॥

चिलचिलाती धूप को जो चाँदनी देवें बना।
काम पड़ने पर करें जो शेर का भी सामना ॥
जो कि हँस हँस के चबा लेते हैं लोहे का चना।
'है कठिन कुछ भी नहीं' जिनके है जी में यह ठना ॥
कोस कितने ही चलें पर वे कभी थकते नहीं।
कौन सी है गाँठ जिसको खोल वे सकते नहीं ॥३॥

काम को आरंभ करके यों नहीं जो छोड़ते।
सामना करके नहीं जो भूल कर मुँह मोड़ते ॥
जो गगन के फूल बातों से वृथा नहीं तोड़ते।
संपदा मन से करोड़ों की नहीं जो जोड़ते ॥
बन गया हीरा उन्हीं के हाथ से है कारबन।
काँच को करके दिखा देते हैं वे उज्ज्वल रतन ॥४॥

पर्वतों को काटकर सड़कें बना देते हैं वे।
सैकड़ों मरुभूमि में नदियाँ वहा देते हैं वे ॥
गर्भ में जल-राशि के बेड़ा चला देते हैं वे।
जंगलों में भी महा-मंगल रचा देते हैं वे ॥
भेद नभ-तल का उन्होंने है बहुत बतला दिया।
है उन्होंने ही निकाली तार की सारी क्रिया ॥५॥

सब तरह से आज जितने देश हैं फूले फले।
बुद्धि, विद्या, धन, विभव के हैं जहाँ डेरे डले ॥
वे बनाने से उन्हीं के बन गए इतने भले।
वे सभी हैं हाथ से ऐसे सपूतों के पले ॥
लोग जब ऐसे समय पाकर जनम लेंगे कभी।
देश की औ जाति की होगी भलाई भी तभी ॥६॥

('पद्य-प्रमोद' से)

ब्रज की गोधूलि

(यह 'प्रियप्रवास' का प्रारंभिक अंश है। श्रीकृष्ण गोचारण के उपरांत सायंकाल के समय गोप-ग्वालों के साथ गोकुल को लौटते हैं। ब्रजवासी अपने-अपने काम छोड़कर उनके दर्शनार्थ गाँव की सीमा पर पहुँच जाते हैं। ब्रज-संध्या का वह अनुपम सौन्दर्य ही इस पाठ का वर्ण्य विषय है।)

दिवस का अवसान समीप था।
गगन था कुछ लोहित हो चला।
तरु-शिखा पर थी अब राजती।
कमलिनी-कुल-वल्लभ की प्रभा ॥

विपिन बीच विहंगम-वृंद का।
कलनिनाद विवर्द्धित था हुआ।
ध्वनिमयी विविधा विहगावली।
उड़ रही नभ-मंडल मध्य थी ॥

अधिक और हुई नभ-लालिमा।
दश - दिशा अनुरंजित हो गई।
सकल पादप - पुंज हरीतिमा।
अरुणिमा विनिमज्जित - सी हुई॥

झलकने पुलिनों पर भी लगी।
गगन के तल की यह लालिमा।
सरि सरोवर के जल में पड़ी।
अरुणता अति ही रमणीय थी॥

अचल के शिखरों पर जा चढ़ी।
किरण पादप - शीश - विहारिणी।
तरणि-बिम्ब तिरोहित हो चला।
गगन - मंडल मध्य शनैः शनैः॥

निमिष में वन-व्यापित-वीथिका।
विविध - धेनु - विभूषित हो गई।
धवल धूसर वत्स - समूह भी।
विलसता जिनके दल साथ था॥

जब हुए समवेत शनैः शनैः।
सकल गोप सधेनु समंडली।
तब चले ब्रज - भूषण को लिए।
अति अलंकृत गोकुल ग्राम को॥

गगन - मंडल में रज छा गई।
दश - दिशा बहु - शब्दमयी हुई।
विशद गोकुल के प्रति - गेह में।
बह चला वर स्रोत विनोद का॥

सुन पड़ा स्वर ज्यों कल - वेणु का।
सकल ग्राम समुत्सुक हो उठा।
हृदय - यंत्र निनादित हो गया।
तुरत ही अनियंत्रित भाव से॥

बहु युवा युवती गृह - बालिका।
विपुल बालक वृद्ध वयस्क भी।
विवश - से निकले निज गेह से।
स्वदृग का दुख - मोचन के लिए॥

इधर गोकुल से जनता कढ़ी।
उमगती पगती अति मोद में।
उधर आ पहुँची बलबीर की।
विपुल - धेनु - विमंडित - मंडली॥

अतसि - पुष्प अलंकृतकारिणी।
शरद नील - सरोरुह रंजिनी।
नवल - सुंदर - श्याम शरीर की।
सजल-नीरद-सी कल-कांति थी॥

विलसता कटि में पट - पीत था।
रुचिर - वस्त्र - विभूषित गात था।
लसे रही उर में बनमाल थी।
कल - दुकूल - अलंकृत स्कंध था॥

मधुरता - मय था मृदु बोलना।
अमृत - सिंचित - सी मुसकान थी।
समद थी जन - मानस मोहती।
कमल - लोचन की कमनीयता॥

सरस - राग - समूह सहेलिका।
सहचरी मनमोहन - मंत्र की।
रसिकता - जननी कल - नादिनी।
मुरलि थी कर में मधुवर्षिणी॥

छलकती मुख की छवि-पुंजता।
छिटिकती क्षिति छू तन की छटा।
बगरती वर दीप्ति दिगंत में।
क्षितिज में क्षणदा-कर कांति सी॥

मुदित गोकुल की जन-मंडली।
जब ब्रजाधिप सम्मुख जा पड़ी।
निरखने मुख की छबि यों लगी।
तृषित - चातक ज्यों घन की घटा।

उछलते शिशु थे अति हर्ष से।
युवक थे रस की निधि लूटते।
जरठ को फल लोचन का मिला।
निरख के सुषमा सुखमूल की॥

बहु - विनोदित थीं ब्रज-बालिका।
तरुणियाँ सब थीं तृण तोड़तीं।
बलि गईं बहु बार वयोवती।
छबि विभूति विलोक ब्रजेन्दु की॥

मुरलिका कर - पंकज में लसी।
जब अचानक थी बजती कभी।
तब सुधारस मंजु - प्रवाह में।
जन - समागम था अवगाहता॥

विविध - भाव - विमुग्ध बनी हुई।
मुदित थी बहु दर्शक - मंडली।
अति मनोहर थी बनती कभी।
बज किसी कटि की कलकिंकिणी॥

इधर था इस भाँति समा बँधा।
उधर व्योम हुआ कुछ और ही।
अब न था उसमें रवि राजता।
किरण भी न सुशोभित थी कहीं॥

खग - समूह न था अब बोलता।
विटप थे बहु नीरव हो गए।
मधुर मंजुल मत्त अलाप के।
अब न यंत्र बने तरु - वृंद थे॥

विहग - नीरवता - उपरांत ही ।
रुक गया स्वर श्रृंग विषाण का ।
कल - अलाप समापित हो गया ।
पर रही बजती वर - वंशिका ।।

ब्रज - धरा - जन जीवन - यंत्रिका ।
विटप - वेलि - विनोदित - कारिणी ।
मुरलिका जन - मानस - मोहिनी ।
अहह नीरवता निहिता हुई ।।

('प्रियप्रवास' से)

प्रश्न और अभ्यास

१. **'कर्मवीर'** कविता के आधार पर सच्चे कर्मवीर के लक्षण बताइए ।

२. निम्नलिखित प्रयोगों के अर्थ स्पष्ट कीजिए :
चिलचिलाती धूप को चाँदनी बना देना; बातों से वृथा गगन के फूल तोड़ना; जल राशि के गर्भ में बेड़ा चला देना; हँस-हँस कर लोहे के चने चबाना; काँच को उज्ज्वल रत्न बना देना ।

३. कवि द्वारा वर्णित संध्या का चित्रण अपने शब्दों में कीजिए ।

४. श्रीकृष्ण के वंशीवादन का गोकुलवासियों पर क्या प्रभाव पड़ा ?

५. निम्नलिखित पंक्तियों का भाव स्पष्ट कीजिए :
(क) व्योम को छूते........रहता है कहीं ।
(ख) अतसि-पुष्प........कांति थी ।
(ग) विपिन-बीच........मध्य थी ।

६. पाठ में से संस्कृत-पदावली तथा मुहावरे चुनकर अयोध्यासिंह उपाध्याय की भाषा-शैली पर विचार प्रकट कीजिए ।

—

जगन्नाथदास 'रत्नाकर'

'रत्नाकर' आधुनिक काल में ब्रजभाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। इनका जन्म वाराणसी के एक संपन्न वैश्य परिवार में सन् १८६६ ई० में हुआ था। इनके पिता श्री पुरुषोत्तमदास फ़ारसी के विद्वान थे तथा हिन्दी के युग-निर्माता भारतेन्दु के प्रगाढ़ मित्र थे। इन दोनों का प्रभाव 'रत्नाकर' पर पड़ा। बी० ए० पास करने के पश्चात् इन्होंने फ़ारसी लेकर एम० ए० की तैयारी की, किन्तु बीमारी के कारण परीक्षा न दे सके। बाल्यावस्था में 'रत्नाकर' 'ज़की' उपनाम से फ़ारसी में कविता करते थे, लेकिन आगे चलकर इन्होंने हिन्दी को ही अपने काव्य का माध्यम बनाया। भारतेन्दु बाबू की गोष्ठियों के प्रभाव-स्वरूप हिन्दी कविता का जो बीज 'रत्नाकर' के हृदय में अंकुरित हुआ था, वही अंततः पल्लवित और पुष्पित हुआ। इनका निधन सन् १९३२ ई० में हुआ।

सर्वप्रथम इन्होंने अवागढ़ रियासत में खज़ाने के निरीक्षक-पद पर काम किया और फिर कुछ समय पश्चात् अयोध्यानरेश ने इन्हें अपने निजी सचिव के रूप में नियुक्त किया। वहाँ ये अनेक विद्वानों के संपर्क में आए तथा विविध विषयों का ज्ञान प्राप्त किया। यही कारण है कि इनके काव्य में वैद्यक, रसायन, मनोविज्ञान, वेदांत, योगदर्शन आदि की छाप स्पष्टतः लक्षित होती है।

आधुनिक काल के कवि होते हुए भी इन्होंने भक्ति और रीति शैली में ही काव्य-रचना की। 'रत्नाकर' के काव्य में जहाँ एक ओर भक्ति की धारा प्रवाहित है वहाँ दूसरी ओर मानवस्वभाव का मनोवैज्ञानिक चित्रण भी उपलब्ध होता है। नवीन प्रभावों को इन्होंने ग्रहण तो किया पर अभिव्यंजना की शैली प्राचीन ही रही। प्रांजल एवं परिष्कृत ब्रजभाषा को इन्होंने अपनी काव्य-भाषा के रूप म स्वीकार किया है।

'उद्धवशतक' 'रत्नाकर' की सर्वश्रेष्ठ काव्य-कृति है। उसके अतिरिक्त **'गंगावतरण'** तथा **'हरिश्चंद्र'** अन्य प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। इन्होंने **'बिहारी-रत्नाकर'** नाम से **'बिहारी सतसई'** की प्रामाणिक और विशद टीका भी लिखी है।
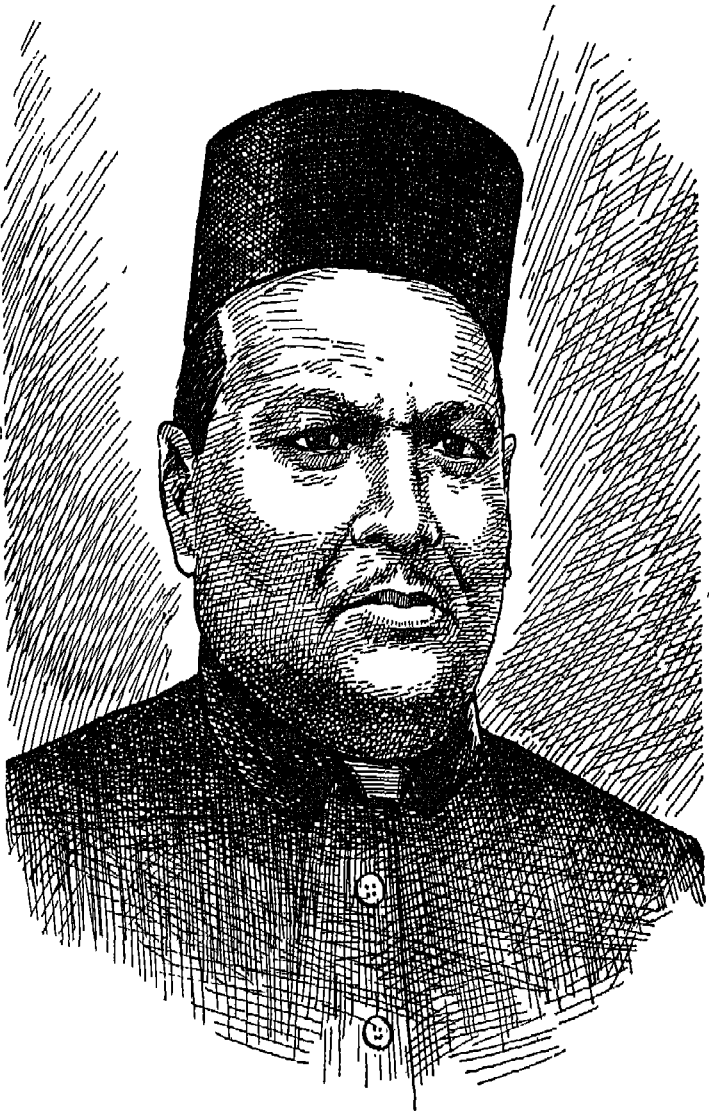
जगन्नाथदास 'रत्नाकर'

उद्धव का मथुरा लौटना

(श्रीकृष्ण के मथुरा चले जाने पर ब्रज के लोग बहुत दुःखी हुए। उन्हें ज्ञान का उपदेश देने के लिए कृष्ण ने अपने परम मित्र और ज्ञानी उद्धव को भेजा। किन्तु गोपियों के प्रेम को देखकर उद्धव ज्ञान की बातें भूल गए और स्वयं प्रेम-विभोर हो उठे। 'उद्धवशतक' से उद्धृत प्रस्तुत कवित्तों के वर्ण्य विषय हैं—(१) ब्रज से उद्धव की विदा और (२) उद्धव के हृदय पर गोपियों के प्रेम का प्रभाव।)

धाईं जित-तित तैं बिदाईं हेत ऊधव की,
गोपी भरीं आरति सँभारति न साँसु री।
कहै रतनाकर मयूर-पच्छ कोऊ लिए,
कोऊ गुंज-अंजुली उमाहै प्रेम-आँसु री।
भाव-भरी कोऊ लिए रुचिर सजाव दही,
कोऊ मही मंजु दाबि दलकति पाँसुरी।
पीत पट नंद जसुमति नवनीत नयौ,
कीरति-कुमारी सुरवारी दई बाँसुरी ॥१॥

कोऊ जोरि हाथ कोऊ नाइ नम्रता सौं माथ,
भाषन की लाख लालसा सौं नहि जात हैं।
कहै रतनाकर चलत उठि ऊधव के,
कातर ह्वै प्रेम सौं सकल मुहि जात हैं।
सबद न पावत सो भाव उमगावत जो,
ताकि-ताकि आनन ठगे से हुकि जात हैं।
रंचक हमारी सुनौ रंचक हमारी सुनौ,
रंचक हमारी सुनौ कहि रहि जात हैं ॥२॥

गोपी, ग्वाल, नंद, जसुदा सौं तौ बिदा ह्वै उठे,
उठत न पाय पै उठावत डगत हैं।
कहै रतनाकर सँभारि सारथी पै नीठि,
दीठिनि बचाइ चल्यौ चोर ज्यौं भगत हैं ॥

कुंजनि की कूल की कलिन्दी की रुऍंदी दसा,
देखि-देखि आँस औ उसाँस उमगत हैं।
रथ तैं उतरि पथ पावन जहाँ हीं तहाँ,
बिकल बिसूरि धूरि लोटन लगत हैं ॥३॥

आए लौटि लज्जित नवाए नैन ऊधौ अब,
सब सुख-साधन कौ सूधौ सौ जतन लै।
कहै रतनाकर गँवाए गुन गौरव औ,
गरब-गढ़ी कौ परिपूरन पतन लै ॥
छाए नैन नीर पीर-कसक कमाए उर,
दीनता अधीनता के भार सौं नतन लै।
प्रेम-रस रुचिर बिराग-तूमड़ी मैं पूरि,
ज्ञान-गूदड़ी मैं अनुराग सौ रतन लै ॥४॥

प्रेम मद-छाके पग परत कहाँ के कहाँ
थाके अंग नैननि सिथिलता सुहाई है।
कहै रतनाकर यौं आवत चकात ऊधौ,
मानौ सुधियात कोऊ भावना भुलाई है ॥
धारत धरा पै ना उदार अति आदर सौं,
सारत बँहोलिनि जो आँस-अधिकाई है।
एक कर राजै नवनीत जसुदा कौ दियौ,
एक कर बंसी बर राधिका पठाई है ॥५॥

आँसुनि की धार औ उभार कौं उसाँसनि के,
तार हिचकीनि के तनिक टरि लेन देहु।
कहै रतनाकर फुरन देहु बात रंच,
भावनि के विषम प्रपंच सरि लेन देहु ॥
आतुर ह्वै और हू न कातर बनावौ नाथ,
नैसुक निवारि पीर धीर धरि लेन देहु।
कहत अबै हैं कहि आवत जहाँ लौं सबै,
नैंकु थिर कढ़त करेजौ करि लेन देहु ॥६॥

ज्वालामुखी गिरि तें गिरत द्रवे द्रव्य कैधौं,
बारिद पियौ है बारि बिष के सिवाने मैं।
कहै रतनाकर कै काली दाँव लेन-काज,
फेन फुफकारै उहि गाँव दुख-साने मैं॥
जीवन बियोगिनि कौ मेघ अँचयौ सो किधौं,
उपच्यौ पच्यौ न उर ताप अधिकाने मैं।
हरि-हरि जासौं बरि-बरि सब बारी उठैं,
जानैं कौन बारि बरसत बरसाने मैं॥७॥

छावते कुटीर कहूँ रम्य जमुना कै तीर,
गौन रौन-रेती सौं कदापि करते नहीं।
कहै रतनाकर बिहाइ प्रेम-गाथा गूढ़,
स्त्रौन रसना में रस और भरते नहीं॥
गोपी ग्वाल बालनि के उमड़त आँसू देखि,
लेखि प्रलयागम हूँ नैंकु डरते नहीं।
होतौ चित चाव जौ न रावरे चितावन कौ,
तजि ब्रज - गाँव इतै पाव धरते नहीं॥८॥

('रत्नाकर' से)

भीष्म-प्रतिज्ञा

भीषम भयानक पुकार्‌यो रन-भूमि आनि,
छाई छिति छत्रिनि की गीति उठि जाइगी।
कहै रतनाकर रुधिर सौं रुँधैगी धरा,
लोथनि पै लोथनि की भीति उठि जाइगी॥
जीति उठि जाइगी अजीत पंडु - पूतनि की,
भूप दुरजोधन की भीति उठि जाइगी।
कैतौ प्रीति-रीति की सुनीति उठि जाइगी, कै
आज हरि-प्रन की प्रतीति उठि जाइगी॥१॥

भीषम के बानिनि की मार इमि माँची गात,
एकहूँ न घात सव्यसाची करि पावै है।
कहै रतनाकर निहारि सो अधीर दसा,
त्रिभुवन-नाथ-नैन नीर भरि आवै है॥
बहि बहि हाथ चक्र-ओर ठहि जात नीठि,
रहि रहि तापै बक्र दीठि पुनि धावै है।
इत प्रन-पालन की कानि सकुचावै उत,
भक्त-भय-घालन की बानि उमगावै है॥२॥

छूट्यौ अवसान मान सकल धनंजय कौ,
धाक रही धनु मैं न साक रही सर मैं।
कहै रतनाकर निहारि करुनाकर कैं,
आई कुटिलाई कछु भौंहनि कैगर मैं॥
रोकि झर रंचक अरोक बर बाननि की,
भीषम यौं भाष्यौ मुसकाइ मंद स्वर मैं।
चाहत बिजै कौं सारथी जौ कियौ सारथ, तौ
बक्र करौ भृकुटी न, चक्र करौ कर मैं॥३॥
('रत्नाकर' से)

गंगावतरण

(सूर्यवंशी महाराज भगीरथ ने अपने अभिशप्त पूर्वजों की मुक्ति के लिए पृथ्वी पर गंगा ले आने की कामना से ब्रह्मा की आराधना की। उनकी तपस्या के फलस्वरूप ब्रह्मा के कमंडल से निकलकर गंगा पृथ्वी पर अवतरित हुईं। 'गंगा-वतरण' से उद्धृत निम्नांकित पंक्तियों में इसी प्रसंग का रोचक और प्रभावपूर्ण चित्रण है।)

निकसि कमंडल तैं उमंडि नभ-मंडल-खंडति।
धाई धार अपार बेग सौं वायु विहंडति॥
भयौ घोर अति सब्द धमक सौं त्रिभुवन तरजे।
महा मेघ मिलि मनहु एक संगहिं सब गरजे॥१॥

भरके भानु-तुरंग चमकि चलि मग सौं सरके।
हरके बाहन रुकत नैंकु नहिं बिधि हरि हर के।।
दिग्गज करि चिक्कार नैन फेरत भय-थरके।
धुनि प्रतिधुनि सौं धमकि धराधर के उर धरके।।२।।

कढ़ि-कढ़ि गृह सौं बिबुध बिबिध जाननि पर चढ़ि-चढ़ि।
पढ़ि-पढ़ि मंगल-पाठ लखत कौतुक कछु बढ़ि-बढ़ि।।
सुर-सुंदरी ससंक बंक दीरघ दृग कीने।
लगीं मनावन सुकृत हाथ कानन पर दीने।।३।।

निज दरेर सौं पौन-पटल फारति फहरावति।
सुर-पुर के अति सघन घोर घन धसि घहरावति।।
चली धार धुधकारि धरा-दिसि काटति कावा।
सगर-सुतनि के पाप-ताप पर बोलति धावा।।४।।

बिपुल बेग सौं कबहुँ उमगि आगे कौं धावति।
सौ सौ जोजन लौं सुढार ढरतिहिं चलि आवति।।
फटिकसिला के बर बिसाल मन बिस्मय बोहत।
मनहु बिसद छद अनाधार अंबर मैं सोहत।।५।।

स्वाति-घटा घहराति मुक्ति-पानिप सौं पूरी।
कैधौं आवति झुकति सुभ्र-आभा-रुचि रूरी।।
मीन मकर-जलब्यालनि की चल चिलक सुहाई।
सो जनु चपला चमचमाति चंचल-छबि-छाई।।६।।

रुचिर रजतमय कै बितान तान्यौ अति बिस्तर।
झिरति बूँद सो झिलमिलाति मोतिनि की झालर।।
ताके नीचैं राग-रंग के ढंग जमाए।
सुर-बनितनि के बृंद करत आनंद-बधाए।।७।।

बर-बिमान-गज-बाजि-चढ़े जो लखत देव-गन।
तिनके तमकत तेज दिब्य दमकत आभूषन।।
प्रतिबिम्बित जब होत परम प्रसरित प्रबाह पर।
जानि परत चहुँ ओर उए बहु बिमल बिभाकर।।८।।

कबहुँ सु धार अपार-बेग नीचे कौं धावै।
हरहराति लहराति सहस जोजन चलि आवै॥
मनु बिधि चतुर किसान पौन निज मन कौ पावत।
पुन्य-खेत-उतपन्न हीर की रासि उसावत॥९॥

छहरावति छबि कबहुँ कोऊ सित सघन घटा पर।
फबति फैलि जिमि जोन्ह-छटा हिम-प्रचुर-पटा पर॥
तिहिं घन पर लहराति लुरति चपला जब चमकै।
जल-प्रतिबिम्बित दीप-दाम दीपति सी दमकै॥१०॥

कबहुँ बायु-बल फूटि छूटि बहु बपु धरि धावै।
चहुँ दिसि तैं पुनि डटति सटति सिमटति चलि आवै॥
मिलि-मिलि द्वै-द्वै चार-चार सब धार सुहाई।
फिरि एकै ह्वै चलति कलित बल बेग बड़ाई॥११॥

जल सौं जल टकराइ कहूँ उच्छलत उमंगत।
पुनि नीचैं गिरि गाजि चलत उत्तंग तरंगत॥
मनु कागदि कपोत गोत के गोत उड़ाए।
लरि अति ऊँचैं उलरि गोति गुथि चलत सुहाए॥१२॥

कबहुँ बायु सौं बिचलि बंक-गति लहरति धावै।
मनहु सेस सित बेस गगन तैं उतरत आवै॥
कबहुँ फेन उफनाइ आइ जल-तल पर राजै।
मनु मुकतनि की भीर छीर-निधि पर छबि छाजै॥१३॥

इहिं बिधि धावति धँसति ढरति ढरकति सुख-देनी।
मनहु सँवारति सुभ सुर-पुर की सुगम निसेनी॥
बिपुल बेग बल बिक्रम कैं ओजनि उमगाई।
हरहराति हरषाति संभु-सनमुख तब आई॥१४॥

भई थकित छबि छकित हेरि हर-रूप मनोहर।
ह्वै आनहि के प्रान रहे तन धरे धरोहर॥
भयो कोप कौ लोप चोप औरै उमगाई।
चित चिकनाई चढ़ी कढ़ी सब रोष-रुखाई॥१५॥

कृपानिधान सुजान संभु हिय की गति जानी।
दियौ सीस पर ठाम ब्राम करि कै मन मानी ।।१

('रत्नाकर' से)

प्रश्न और अभ्यास

१. उद्धव कौन थे ? वे ब्रज में क्यों भेजे गए और उन्होंने गोपियों को क्या संदेश दिया ?
२. गोपियों ने उद्धव से क्या कहा और उसका उद्धव पर क्या प्रभाव पड़ा ?
३. महाभारत-युद्ध में कृष्ण ने क्या प्रतिज्ञा की थी और उन्हें किस कारण अपनी प्रतिज्ञा भंग करनी पड़ी ?
४. '**भीष्मप्रतिज्ञा**' कविता के आधार पर भीष्म के रण-कौशल का अपने शब्दों में वर्णन कीजिए।
५. गंगावतरण की कथा संक्षेप में लिखिए।
६. भावार्थ लिखिए :

(क) हरि-हरि जासौं बरि-बरि........बरसत बरसाने मैं।
(ख) कैतौ प्रीति-रीति........उठि जाइगी ।
(ग) चाहत बिजै कौं........चक्र करौ कर मैं।
(घ) रुचिर रजतमय........आनंद-बधाए ।

माखनलाल चतुर्वेदी

माखनलाल चतुर्वेदी का जन्म सन् १८८८ ई० में होशंगाबाद (मध्यप्रदेश) जिले के बाबई गाँव में हुआ था। इन्होंने नार्मल परीक्षा पास करके अध्यापन-कार्य प्रारंभ किया। इसी समय इन्होंने हिन्दी के साथ मराठी, गुजराती और अंग्रेजी आदि भाषाओं का अध्ययन किया। कुछ वर्ष बाद चतुर्वेदी जी अध्यापन-कार्य छोड़ कर **'प्रभा'** के संपादकीय विभाग में चले गए और फिर **'कर्मवीर'** के संपादक बन गए। उसी समय इन्होंने 'एक भारतीय आत्मा' के उपनाम से ओजपूर्ण राष्ट्रीय कविताएँ लिखीं। इन्होंने सन् १९२१-२२ ई० के असहयोग आंदोलन में सक्रिय भाग लिया, फलतः इन्हें कारावास का दंड भी भोगना पड़ा। साहित्य-सेवा के लिए सागर विश्वविद्यालय ने इन्हें **डी० लिट०** उपाधि से तथा भारत सरकार ने **पद्मभूषण** से अलंकृत किया है।

चतुर्वेदी जी का काव्य मुख्यतः राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत है। इनकी कविताओं में स्वातंत्र्य के साथ त्याग और बलिदान की भावना का स्वर सर्वत्र मिलता है। इसके अतिरिक्त इन्होंने प्रेम और प्रकृति-संबंधी कविताएँ भी लिखी हैं। भारतीय-स्वतंत्रता-आंदोलन को वाणी प्रदान करनेवाले कवियों में इनका प्रमुख स्थान है।

चतुर्वेदी जी का ध्यान मूलतः भाव पर केन्द्रित रहता है, अतः कविता के बाह्य बंधनों को ये पूरी तरह स्वीकार नहीं कर पाते। छंद-विधान में नवीनता लाने के लिए दो-तीन छंदों को मिलाकर नवीन छंद-योजना भी इन्होंने की है। शब्द-चयन में तत्सम या तद्भव का बंधन भी इन्होंने स्वीकार नहीं किया। बोलचाल के शब्दों के साथ उर्दू-फ़ारसी के शब्द भी इनकी कविता में मिलते हैं।

'हिमकिरीटिनी', **'हिमतरंगिणी'**, **'युगचरण'**, **'समर्पण'**, तथा **'माता'** इनकी प्रमुख काव्य-रचनाएँ हैं और गद्य-कृतियों में **'साहित्य देवता'** प्रसिद्ध है।
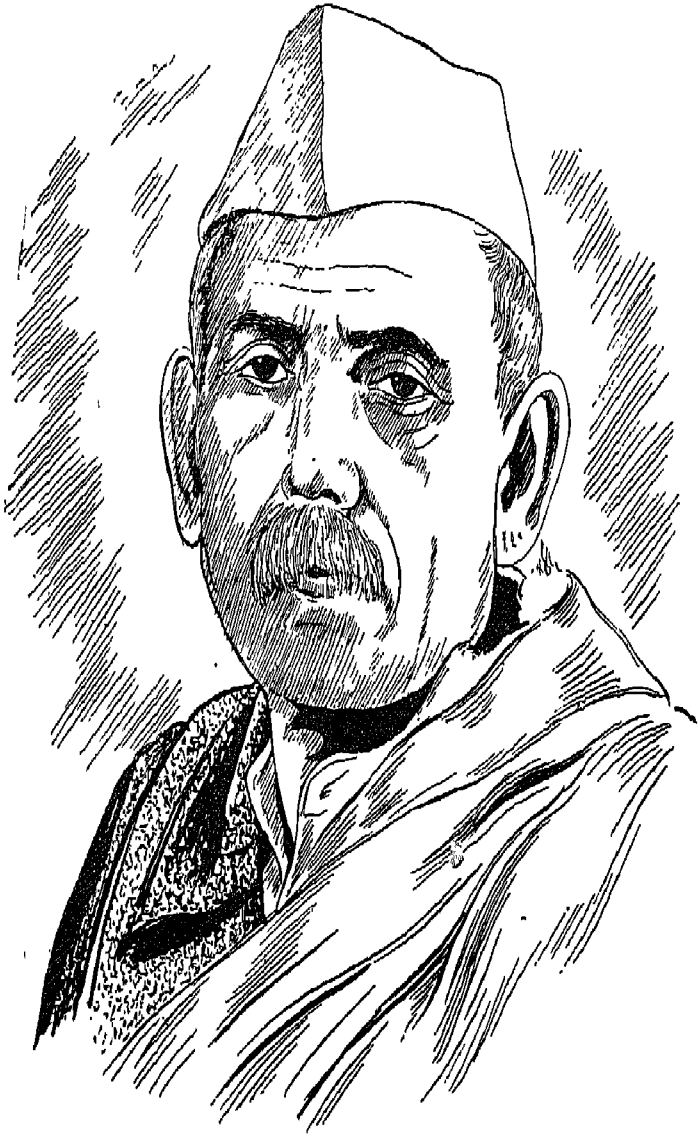
माखनलाल चतुर्वेदी

प्राण का श्रृंगार

वाणि वीणा और वेणी की त्रिवेणी धार बोले,
नृत्य बोले, गीत बोले, मूर्ति बोले, प्यार बोले।
आज हिमगिरि की पुकारों, सिन्धु सौ-सौ बार बोले,
आज गंगा की लहर में, प्रलय का व्यापार बोले।
युग तरुण, तव नेत्र तक, वह नेह का नव-ज्वार आया,
काल की झंकार आई, प्राण का श्रृंगार आया।
अब नरों में, नारियों में हो कि बलशाली भुजा।
नाग-सी फुंकारती, हों कोटि मतवाली भुजा।
कोटि-शिर ये शिर नहीं, बलि के अनंत प्रसाद हैं ये,
और काली के चरण के मधुर नूपुर-नाद हैं ये।
तीर्थ ? ये ऊँचे उठाएँ शिर, गगन से बोल बोलें,
साँस लेती लाश को नीचे गिरा,—जिन्दा टटोलें।
फिर बजे वीणा प्रवीणा, फिर भले रँगरेलियाँ हों,
रक्त लेता हो चुनौती, फिर भले अठखेलियाँ हों।
देश के 'शूच्यग्र' पर कुरबान हो, उठती जवानी,
देश की मुसकान पर बलिदान 'राजा' और 'रानी'।
अमित मधु-आकर्षणों का ज्वार हरि, वंशी बजाए,
स्वर भरे कश्मीर उसमें, भैरवी नेपाल गाए।
मोह ले मन को हमारे नेह का गांधार प्रहरी,
और लंका से हमारी सिन्धु-सी हो प्रीत गहरी।
आज तेरे नेह पर, असहाय का अभिमान ठहरा,
दीन का ईमान ठहरा, पीड़ितों का मान ठहरा।
चरणतल में भूमि ठहरी, शीष पर भगवान ठहरा,
एक अँगुली के इशारे अखिल हिन्दुस्तान ठहरा।

('युगचरण' से)

मुक्त गगन है मुक्त पवन है

मुक्त गगन है, मुक्त पवन है, मुक्त साँस गरबीली।
लाँघ सात लाँबी सदियों को हुई शृंखला ढीली।
उठ रणराते, ओ बलखाते, विजयी भारतवर्ष।
नक्षत्रों पर बैठे पूर्वज, माप रहे उत्कर्ष !

ओ पूरब के प्रलयी पंथी
ओ जग के सेनानी !
होने दे भूकंप कि तूने, आज-
भृकुटियाँ तानीं।

नभ तेरा है ?—तो उड़ते हैं वायुयान ये किसके ?
भुज-वज्रों पर, मुक्ति-स्वर्ण को देख लिया है घिसके।

तीन ओर सागर तेरा है,
लहरें दौड़ी आतीं,
चरण, भुजा, कटिबंध देश तक,
वे अभिषेक सजातीं।

(क्या लहरों से खेल रहे वे हैं जलयान तुम्हारे ?
नहीं ? अरे तो हटे न अब तक लहरों के हत्यारे ?
उठ पूरब के प्रहरी, पश्चिम जाँच रहा घर तेरा ?
साबित कर, तेरे घर पहले होता विश्व सवेरा।

तुझ पर पड़ जो किरनें जूठी—
हो जातीं, जग पाता,
जीने के ये मंत्र सूर्य से—
सीखो — भाग्य - विधाता।)

सूझों में, साँसों में, संगर में, श्रम में, ज्वारों में,
जीने में, मरने में, प्रतिभा में, आविष्कारों में।

सागर की बाहें लाँघे हैं,
तट-चुंबित भू-सीमा,

तू भी सीमा लाँघ, जगा एशिया,
उठा भुज भीमा !

आज हो गई धन्य, प्रबल हिन्दी वीरों की भाषा,
कोटि-कोटि सिर कलम किए फूली उसकी अभिलाषा।

जग कहता है तू विशाल है,
तू महान, जय तेरी,
लोक-लोक से बरस रही,
तुझ पर पुष्पों की ढेरी।

तीन तरफ सागर की लहरें जिसका बने बसेरा,
पतवारों पर नियति सजाती जिसका साँझ-सवेरा।
बनती हों मल्लाह-मुट्ठियाँ सतत भाग्य की रेखा,
रतनाकर रतनों का देता हो टकराकर लेखा।

उस लहरीले घर के झंडे,
देश-देश में लहरें,
लहरों से जाग्रत नर-प्रहरी
कभी न रुककर ठहरें।

उठता हो आकाश, हिमालय दिव्य द्वार हो अपना,
सागर हो विजयिनी माँ तेरा, उस परसों का सपना।
चिन्तक, चिन्ता-धारा तेरी, आज प्राण पा बैठी,
रे योद्धा प्रत्यंचा तेरी, उठ कि बाण पा बैठी।

लाल किले का झंडा हो
अंगुलि-निर्देश तुम्हारा,
और कटे धड़वाला अर्पित,
तुम को देश तुम्हारा।

मिले रक्त से रक्त, मने अपना त्योहार सलोना।
भरा रहे अपनी बलि से माँ की पूजा का दोना।

हथकड़ियों वाले हाथों हैं, शत-शत बंदनवारें,
और चूड़ियों की कलाइयाँ उठ आरती उतारें।

हो नन्ही दुनिया के हाथों,
कोटि-कोटि जयमाला,
मस्तक पर दायित्व, हृदय में—
वज्र, दृगों में ज्वाला।

तीस करोड़ धड़ों पर गर्वित, उठे, तने ये सिर हैं,
तुम संकेत करो, कि हथेली पर शत-शत हाज़िर हैं।

('युगचरण' से)

युग-पुरुष

उठ, उठ तू, ओ तपी, तमोमय जग उज्ज्वल कर
गूँजे तेरी गिरा, कोटि भवनों में घर-घर

गौरव का तू मुकुट पहिन
युग के कर-पल्लव
तेरा पौरुष जगे, राष्ट्र—
हो उन्नत अभिनव।

तेरे कंधों लहराए, प्रतिभा की खेती,
तेरे हाथों चले नाव, जग-संकट खेती।
तुझ पर पागल बने आज उन्मत्त ज़माना,
तेरे हाथों बुने सफलता ताना-बाना।

तू युग की हुंकार,
अमर जीवन की वाणी,
तेरी साँसें अमर हो उठें,
युग - कल्याणी।

तेरा पहरेदार, विन्ध्य का दक्षिण उत्तर,
तेरी ही गर्जना, नर्मदा का कोमल स्वर।
तेरी जीवित साँस आज तुलसी की भाषा,
तेरा पौरुष सतत अमर जीवन की आशा।

जाग, जाग उठ तपी, तुझे
जग का आमंत्रण
विभु दे तुझको उठा
सौंप कर अमृत के कण।

तेरी कृति पर सजे हिमालय रजत-मुकुट-सा,
सिन्धु, इरावति बने सुहावन वैभव घट-सा,
गंगा-जमुना बहें तुम्हारी उर-माला-सी,
विहरित हरित स्वदेश करें, कृषि-जन-कमला-सी।

कमर-बंद नर्मदा बने
उठ सेना-नायक।
शस्त्र-सज्जिता तरल तापती
बने सहायक।

तेरी असि-सी लटक चलें कृष्णा कावेरी,
आज सृजन में होड़ लगे विधना से तेरी।
लिख, लिख तू ओ तपी, जगा उन्मत्त ज़माना
जिसने ऊँचा शीश किए जग को पहचाना।

तू हिमगिरि से उठा
कुमारी तक लहराया,
रतनाकर ले आज—
चरण धोने को आया।

उठ, ओ युग की अमर-साँस, कृति की नव-आशा,
उठ, ओ यशोविभूति, प्रेरणा की अभिलाषा,

तेरी आँखों सजे विश्व की सीमा-रेखा,
अंगुलियों पर रहे, जगत की गति का लेखा।

('समर्पण' से)

प्रश्न और अभ्यास

१. **'प्राण का शृंगार'** कविता का केन्द्रीय भाव क्या है और उससे क्या प्रेरणा मिलती है ?

२. **'मुक्त गगन है, मुक्त पवन है'** शीर्षक कविता में स्वतंत्र भारत का कैसा चित्र प्रस्तुत किया गया है ? उसमें कवि ने किन अभावों की ओर इंगित किया है ?

३. **'युग-पुरुष'** कविता में कवि ने किसको संबोधित किया है और वह उससे क्या आशाएँ रखता है ?

४. निम्नलिखित का आशय स्पष्ट कीजिए :

(क) **देश के 'शूच्यग्र'........'राजा' और 'रानी'।**

(ख) **आज हिमगिरि की पुकारों........प्रलय का व्यापार बोले।**

(ग) **नभ तेरा है ?........लिया है घिसके।**

(घ) **तेरी कृति पर........कृषि-जन-कमला-सी।**

५. निम्नांकित पंक्तियों में से एक में अनुप्रास, एक में रूपक तथा एक में अपह्नुति अलंकार है। किस पंक्ति में कौन-सा अलंकार है, यह बताते हुए प्रत्येक अलंकार का लक्षण लिखिए :

(क) **कोटि शिर ये शिर नहीं, बलि के अनंत प्रसाद हैं ये।**

(ख) **भुज-वज्रों पर मुक्ति-स्वर्ण को देख लिया है घिसके।**

(ग) **वाणि, वीणा और वेणी की त्रिवेणी धार बोले।**

—

जयशंकर प्रसाद

जयशंकर प्रसाद का जन्म वाराणसी के एक संभ्रांत वैश्य परिवार में सन् १८९० ई० में हुआ था। 'सुंघनी साहु' के नाम से प्रसिद्ध बाबू देवीप्रसाद इनके पिता थे जिनकी मृत्यु प्रसाद के बाल्यकाल में ही हो गई थी। इनकी शिक्षा मुख्यत: घर पर ही हुई। संस्कृत साहित्य के प्रति इनके मन में आरंभ से ही गहरा अनुराग था, इसलिए वेद और उपनिषद् के साथ इतिहास और दर्शन का भी इन्होंने गंभीर अध्ययन किया। इनका जीवन निरंतर संघर्षरत रहा और इन्हें अनेक पारिवारिक झंझटों का सामना करना पड़ा। सन् १९३७ ई० में क्षय रोग से इनका देहांत आ।

प्रसाद अत्यंत सौम्य, शांत एवं गंभीर प्रकृति के व्यक्ति थे। वे परनिन्दा और आत्मस्तुति दोनों से सदा दूर रहते थे। सांसारिक विज्ञापन और यशोलिप्सा से तटस्थ रहकर वे शास्त्रीय ग्रंथों के अध्ययन और मनन में ही लीन रहते थे। उनके मनोविनोद के साधन थे शतरंज, बागबानी, शास्त्रचर्चा और कवितापाठ। काव्य-कला के अतिरिक्त उनका संगीत, चित्र और मूर्तिकला से भी गहरा अनुराग था। प्राचीन भग्नावशेषों के अध्ययन में भी उन्हें अत्यधिक आनंद की अनुभूति होती थी।

प्रसाद कवि, कथाकार और नाटककार होने के अतिरिक्त दार्शनिक और इतिहासज्ञ भी थे। ये युगप्रवर्तक साहित्य-स्रष्टा थे। कला और दर्शन का मणिकांचन-संयोग इनके काव्य की विशेषता है। छायावादी शैली-शिल्प का प्रौढ़तम रूप इनकी कविता में उपलब्ध होता है।

'कानन कुसुम' और **'प्रेम-पथिक'** प्रसाद की प्रारंभिक रचनाएँ हैं। **'झरना'**, **'आँसू'** तथा **'लहर'** इनकी प्रमुख काव्य-रचनाएँ हैं और **'कामायनी'** इनकी अंतिम एवं प्रौढ़तम काव्य-कृति है। अनेक विद्वानों के मत से यह आधुनिक हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। इसमें मानव-सभ्यता के विकास की कथा रूपक-शैली में अंकित की गई है। काव्य के अतिरिक्त इन्होंने नाटक, कहानी, उपन्यास तथा निबंध भी लिखे और नाटक के क्षेत्र में तो इनका स्थान सर्वोच्च है। फिर भी मूलरूप में प्रसाद कवि ही हैं।
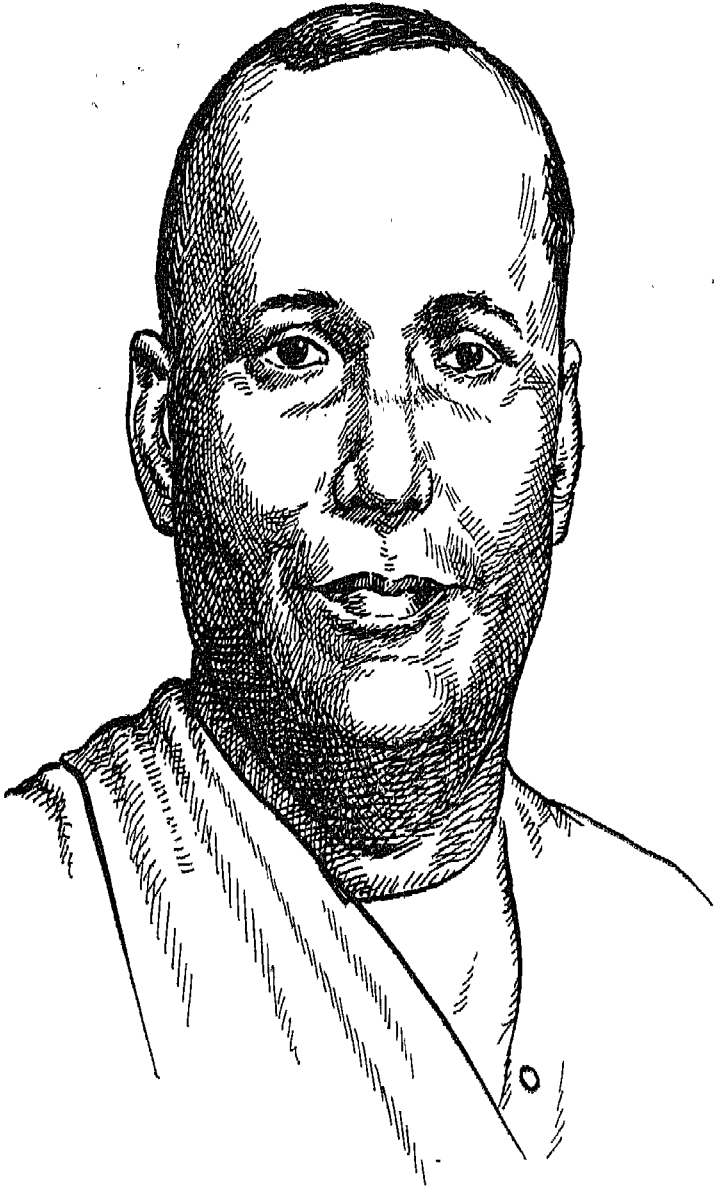
जयशंकर प्रसाद

विजयिनी मानवता

(यह अवतरण 'कामायनी' के श्रद्धा सर्ग से उद्धृत है। चिन्ता में निमग्न मनु से श्रद्धा का साक्षात्कार होता है। श्रद्धा मनु को निराश देखकर सांत्वना देती है और कर्तव्य-पथ पर अग्रसर होने के लिए प्रोत्साहित करती है।)

कहा आगंतुक ने सस्नेह—
"अरे, तुम इतने हुए अधीर !
हार बैठे जीवन का दाँव,
जीतते मरकर जिसको वीर।

तप नहीं केवल जीवन सत्य
करुण यह क्षणिक दीन अवसाद ;
तरल आकांक्षा से है भरा
सो रहा आशा का आह्लाद।

प्रकृति के यौवन का शृंगार
करेंगे कभी न बासी फूल ;
मिलेंगे वे जाकर अति शीघ्र
आह उत्सुक है उनकी धूल।

पुरातनता का यह निर्मोक
सहन करती न प्रकृति पल एक ;
नित्य नूतनता का आनंद
किए है परिवर्तन में टेक।

युगों की चट्टानों पर सृष्टि
डाल पद-चिह्न चली गंभीर ;
देव, गंधर्व, असुर की पंक्ति
अनुसरण करती उसे अधीर।

एक तुम, यह विस्तृत भू-खंड
प्रकृति-वैभव से भरा अमंद ;

कर्म का भोग, भोग का कर्म
यही जड़ का चेतन आनंद।

अकेले तुम कैसे असहाय
यजन कर सकते ? तुच्छ विचार !
तपस्वी ! आकर्षण से हीन
कर सके नहीं आत्म विस्तार।

दब रहे हो अपने ही बोझ
खोजते भी न कहीं अवलंब ;
तुम्हारा सहचर बनकर क्या न
उऋण होऊँ मैं बिना विलंब ?

समर्पण लो सेवा का सार
सजल संसृति का यह पतवार,
आज से यह जीवन उत्सर्ग
इसी पद तल में विगत-विकार।

दया, माया, ममता लो आज,
मधुरिमा लो, अगाध विश्वास ;
हमारा हृदय-रत्न-निधि स्वच्छ
तुम्हारे लिए खुला है पास।

बनो संसृति के मूल रहस्य
तुम्हीं से फैलेगी वह बेल ;
विश्व भर सौरभ से भर जाय
सुमन के खेलो सुंदर खेल।

और यह क्या तुम सुनते नहीं
विधाता का मंगल वरदान—
'शक्तिशाली हो, विजयी बनो'
विश्व में गूँज रहा जय गान।

डरो मत अरे अमृत-संतान
अग्रसर है मंगलमय वृद्धि ;
पूर्ण आकर्षण जीवन-केन्द्र
खिंची आएगी सकल समृद्धि ।

देव-असफलताओं का ध्वंस
प्रचुर उपकरण जुटाकर आज।
पड़ा है बन मानव-संपत्ति
पूर्ण हो मन का चेतन राज ।

चेतना का सुंदर इतिहास--
अखिल मानव भावों का सत्य ।
विश्व के हृदय-पटल पर दिव्य
अक्षरों से अंकित हो नित्य ।

विधाता की कल्याणी सृष्टि
सफल हो इस भूतल पर पूर्ण ;
पटें सागर, बिखरें ग्रह-पुंज
और ज्वालामुखियाँ हों चूर्ण ।

उन्हें चिनगारी सदृश सदर्प
कुचलती रहे खड़ी सानंद ;
आज से मानवता की कीर्ति
अनिल, भू, जल में रहे न बंद ।

जलधि के फूटें कितने उत्स
द्वीप, कच्छप डूबें-उतरायें ;
किन्तु वह खड़ी रहे दृढ़ मूर्ति
अभ्युदय का कर रही उपाय ।

विश्व की दुर्बलता बल बने,
पराजय का बढ़ता व्यापार ;

हँसाता रहे उसे सविलास
शक्ति का क्रीड़ामय संचार।

शक्ति के विद्युत्कण, जो व्यस्त
विकल बिखरे हैं, हो निरुपाय,
समन्वय उसका करे समस्त
विजयिनी मानवता हो जाय!"

('कामायनी' से)

बीती विभावरी जाग री

बीती विभावरी जाग री!
अंबर पनघट में डुबो रही--
तारा-घट ऊषा नागरी।

खग-कुल कुल-कुल सा बोल रहा,
किसलय का अंचल डोल रहा,
लो यह लतिका भी भर लाई--
मधु मुकुल नवल रस गागरी।

अधरों में राग अमंद पिए,
अलकों में मलयज बंद किए--
तू अब तक सोई है आली।
आँखों में भरे बिहाग री!

('लहर' से)

किरण

किरण! तुम क्यों बिखरी हो आज,
रँगी हो तुम किसके अनुराग,

स्वर्ण सरसिज किंजल्क समान,
उड़ाती हो परमाणु पराग।

धरा पर झुकी प्रार्थना सदृश,
मधुर मुरली-सी फिर भी मौन,—
किसी अज्ञात विश्व की विकल-
वेदना-दूती-सी तुम कौन ?

अरुण शिशु के मुख पर सविलास,
सुनहली लट घुँघराली कांत,
नाचती हो जैसे तुम कौन ?—
उषा के अंचल में अश्रांत।

भला उस भोले मुख को छोड़,
और चूमोगी किसका भाल,
मनोहर यह कैसा है नृत्य,
कौन देता है सम पर ताल ?

कोकनद मधुधारा - सी तरल,
विश्व में बहती हो किस ओर ?
प्रकृति को देती परमानंद,
उठाकर सुंदर सरस हिलोर।

स्वर्ग के सूत्र सदृश तुम कौन,
मिलाती हो उससे भूलोक ?
जोड़ती हो कैसा संबंध,
बना दोगी क्या विरज विशोक !

सुदिन मणि-वलय विभूषित उषा—
सुंदरी के कर का संकेत—
कर रही हो तुम किसको मधुर,
किसे दिखलाती प्रेम निकेत।

चपल ! ठहरो कुछ लो विश्राम,
चल चुकी हो पथ शून्य अनंत,
सुमन मंदिर के खोलो द्वार,
जगे फिर सोया वहाँ बसंत।

('झरना' से)

हिमाद्रि तुंग शृंग से

हिमाद्रि तुंग शृंग से
प्रबुद्ध शुद्ध भारती—
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला
स्वतंत्रता पुकारती—
'अमर्त्य वीरपुत्र हो, दृढ़-प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पंथ है, बढ़े चलो, बढ़े चलो।'
असंख्य कीर्ति-रश्मियाँ,
विकीर्ण दिव्य दाह-सी
सपूत मातृभूमि के—
रुको न शूर साहसी!
अराति सैन्य सिन्धु में, सुवाड़वाग्नि से जलो,
प्रवीर हो जयी बनो—बढ़े चलो, बढ़े चलो!

('चंद्रगुप्त' से)

हिमालय के आँगन में

हिमालय के आँगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार।
उषा ने हँस अभिनंदन किया और पहनाया हीरक हार।

जगे हम, लगे जगाने विश्व, लोक में फैला फिर आलोक ।
व्योम-तम-पुंज हुआ तब नष्ट, अखिल संसृति हो उठी अशोक ।
विमल वाणी ने वीणा ली कमल कोमल कर में सप्रीत ।
सप्तस्वर सप्तसिन्धु में उठे, छिड़ा तब मधुर साम-संगीत ।
बचाकर बीज रूप से सृष्टि, नाव पर झेल प्रलय का शीत ।
अरुण-केतन लेकर निज हाथ, वरुण पथ में हम बढ़े अभीत ।
सुना है दधीचि का वह त्याग, हमारा जातीयता विकास ।
पुरंदर ने पवि से है लिखा, अस्थि-युग का मेरे इतिहास ।
सिन्धु-सा विस्तृत और अथाह एक निर्वासित का उत्साह ।
दे रही अभी दिखाई भग्न मग्न रत्नाकर में वह राह ।
धर्म का ले लेकर जो नाम हुआ करती बलि, कर दी बंद ।
हमीं ने दिया शांति-संदेश, सुखी होते देकर आनंद ।
विजय केवल लोहे की नहीं, धर्म की रही धरा पर धूम ।
भिक्षु हो कर रहते सम्राट दया दिखलाते घर-घर घूम ।
यवन को दिया दया का दान, चीन को मिली धर्म की दृष्टि ,
मिला था स्वर्ण-भूमि को रत्न, शील की सिंहल को भी सृष्टि ।
किसी का हमने छीना नहीं, प्रकृति का रहा पालना यहीं ।
हमारी जन्मभूमि थी यही, कहीं से हम आए थे नहीं ।
जातियों का उत्थान-पतन, आँधियाँ, झड़ी, प्रचंड समीर ।
खड़े देखा, झेला हँसते, प्रलय में पले हुए हम वीर ।
चरित थे पूत, भुजा में शक्ति, नम्रता रही सदा संपन्न ।
हृदय के गौरव में था गर्व, किसी को देख न सके विपन्न ।
हमारे संचय में था दान, अतिथि थे सदा हमारे देव ।
वचन में सत्य, हृदय में तेज, प्रतिज्ञा में रहती थी टेव ।
वही है रक्त, वही है देश, वही साहस है, वैसा ज्ञान ।
वही है शांति, वही है शक्ति, वही हम दिव्य आर्य-संतान ।
जिएँ तो सदा उसी के लिए, यही अभिमान रहे, यह हर्ष ,
निछावर कर दें हम सर्वस्व, हमारा प्यारा भारतवर्ष ।

('स्कंदगुप्त' से)

प्रश्न और अभ्यास

१. पाठ के आधार पर कामायनी (श्रद्धा) का चरित्र-चित्रण कीजिए।

२. मनु के अधीर होने पर श्रद्धा ने उन्हें किस प्रकार कर्म-पथ पर अग्रसर किया ?

३. किरण को **'वेदना की दूती'**, **'स्वर्ग के सूत्र सदृश'** और **'कोकनद मधुधारा-सी तरल'** क्यों कहा गया है ?

४. **'हिमाद्रि तुंग शृंग से'** कविता में किस रस की अभिव्यक्ति हुई है ? उससे क्या प्रेरणा मिलती है ?

५. अंत:कथाओं को स्पष्ट करते हुए **'हिमालय के आँगन में'** कविता के आधार पर प्राचीन भारत की महिमा का वर्णन कीजिए।

६. निम्नलिखित पद्यांशों का भाव स्पष्ट कीजिए :

(क) पुरातनता का······टेक।

(ख) धरा पर झुकी······तुम कौन ?

(ग) शक्ति के विद्युत्कण······हो जाय।

(घ) विजय केवल लोहे ·····घर-घर घूम।

७. **'बीती विभावरी जाग री'** गीत का सौन्दर्य स्पष्ट कीजिए।

—

सियारामशरण गुप्त

कवि श्री सियारामशरण गुप्त का जन्म सन् १८९५ ई० में चिरगाँव, जिला झाँसी (उत्तरप्रदेश) के वैश्य परिवार में हुआ था। ये राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त के अनुज थे। निरंतर श्वास रोग से पीड़ित रहने पर भी सियारामशरण जी साहित्य-साधना के प्रति जागरूक रहे। सन् १९६३ ई० में इनका देहावसान हुआ।

सियारामशरण ने उन अछूते विषयों को भी अपने काव्य में स्थान दिया जो दैनिक जीवन के समीप होते हुए भी प्रायः कवियों द्वारा उपेक्षित रहे हैं। इनके काव्य में प्राचीन के प्रति आस्था और प्रेरणाप्रद नवीन के प्रति उत्साह मिलता है। इनका काव्य अनुभूति और आस्था का काव्य है। जीवन के चिरंतन आदर्शों में कवि का अटूट विश्वास था; इसीलिए युद्ध और संघर्ष के इस युग में भी अहिंसा, प्रेम, सद्भाव और शांति का पुनीत स्वर इनके काव्य में निरंतर प्रतिध्वनित होता रहा है। गांधी और विनोबा भावे के जीवन-दर्शन से प्रभावित होकर इन्होंने चिन्तन और अनुभूतिप्रधान काव्य का सर्जन किया।

सियारामशरण जी की साहित्य-साधना बहुमुखी थी। इनका साहित्य गुण और परिमाण दोनों ही दृष्टियों से समृद्ध है। उत्कृष्ट कवि होने के साथ-साथ सफल उपन्यासकार, नाटककार, कहानीकार तथा निबंधकार के रूप में भी इनकी पर्याप्त ख्याति है। इनकी भाषा स्वच्छ, प्रसादमयी तथा संस्कृत के सरल शब्दों से युक्त है। उसमें प्रादेशिक या विदेशी शब्दों का प्रयोग बहुत कम हुआ है। चिन्तनप्रधान शैली में काव्य-रचना करने पर भी इन्होंने सहजता और सुबोधता को कहीं छोड़ा नहीं है। भाषा की प्रांजलता पर इनका ध्यान सतत बना रहा है फलतः बौद्धिक चिन्तनपूर्ण विषयों पर लिखी इनकी कविताएँ भी सुबोध और सरल हैं।

'मौर्य विजय', 'आर्द्रा', 'पाथेय', 'आत्मोत्सर्ग', 'मृण्मयी', 'बापू', 'उन्मुक्त', और **'नकुल'** इनकी मुख्य काव्य-कृतियाँ हैं।

सियारामशरण गुप्त

सम्मिलित

(१)

"चलो, चलो इस अमलतास के फूल न तोड़ो ;
ठीक नहीं यह, इस रसाल की ममता छोड़ो।"
विस्मित था मैं, भला यहाँ ऐसा है भय क्या,
यह निषेध किसलिए, गूढ़ इसमें आशय क्या।
मेरा मन तो हरा हो गया इन्हें निरख कर ;
दोनों का यह रुचिर रूप नयनों से चख कर।
और अधिक के हेतु समुत्सुक हूँ मैं मन में,
ये दोनों जड़ विटपि यहाँ इस विरल विजन में।
भेंट रहे हैं एक दूसरे को खिलखिलकर ;
निज-निज सीमा लाँघ सहोदर-से हिलमिलकर।
इसकी शाखा लिए कनक-कुसुमों की डाली ;
उसके कर में मधुर-फलों की भेंट निराली।
पुलकांदोलित पत्र परस्पर की छाया में ;
छाया भी अविभिन्न परस्पर की माया में।

(२)

किन्तु बताया गया मुझे, मैंने भी जाना,
कटु प्रसंग वह शोचनीय दस बरस पुराना।
"दो स्वजनों में मिले-जुले इस भूमि-खंड पर,
वैर-भाव बढ़ गया, चंड होकर प्रचंडतर।
कहा एक ने—'स्वत्व यहाँ इस पर है मेरा',
कहा अन्य ने—'कौन, कहाँ का तू, क्या तेरा?'
बढ़ते-बढ़ते हुआ क्रोध का रूप भयानक ;
आपस में चल पड़े एक दिन शस्त्र अचानक।

रुधिर गिराते हुए यहीं दोनों वे सोए ;
इसी भूमि पर सहठ प्राण दोनों ने खोए।
उसी बरस नव रुधिर पिए उस क्रूर कलह का ,
दीख पड़े अंकुरित यहाँ ये दो द्रुम सहसा।
ठहरो मत इस ठौर यहाँ, ये फूल न तोड़ो ;
ठीक नहीं यह, इस रसाल की ममता छोड़ो।
रिपु का इनका प्रेम-मिलन; शापित यह धरती ;
कलह-प्रेत की मूर्ति यहाँ दिन-रात विचरती।'

कलह-प्रेत की मूर्ति !—अरे ओ मानव भोले ,
धरती के इस प्रेम-तीर्थ में पावन हो ले।
तू इसको रुधिराक्त करों से आया छूने ,
खंड-खंड कर इसे काटना चाहा तूने।
पर अब भी यह वही—अखंडित है, अमलिन है ;
चिर-नूतन फल-फूल लिए शोभित प्रतिदिन है।
तुम दो का विष-वैर शांति सह पी जाती है।
नव-नव जीवन-सुधा पिला लौटा लाती है।
तुझको फिर-फिर यहाँ अहा ! तरु-तरु, तृण-तृण में
बाँधे है यह तुझे प्रेम-प्रियता के ऋण में।
नहीं भूलता कलह तदपि,—हा ! तू यह कैसा ;
क्या रिपु-रिपु में मंजु-मिलन हो सकता ऐसा ?
मातः वसुधे, स्वजन-स्वजन का वैर-पंक वह
तेरी सुरसरि-मध्य हुआ है निष्कलंक यह।
तेरे इस युग-विटपि तले मैं निर्भय घूमूँ ;
लेकर ये फल-फूल इन्हीं पत्तों-सा झूमूँ।

('मृण्मयी' से)

बापू

विश्व - महावंश - पाल,
धन्य, तुम धन्य हे धरा के लाल!
छद्म - छल के अबोध,
वीतराग वीतक्रोध
तुम में पुरातन है नूतन में,
नूतन चिरंतन में।
छोटे - से क्षितिज हे,
वसुधा के निज हे,
वसुधा तुम्हारे बीच स्वर्ग में समुन्नत है,
स्वर्ग वसुधा में समागत है,
आकर तुम्हारे नए संगम में,
लघु अवतीर्ण है महत्तम में,
दूर और पास आस-पास खिले,
एक दूसरे से हिले
भीतर में बाहर में,
हास और रोदन ध्वनित एक स्वर में
जानें किस भाषा में,
ज्ञात किसे, जानें किस आशा में,
हास में तुम्हारे विश्व हँसता;
रोदन में आकर निवसता
विश्व-वेदना का महा पारावार;
घोर - घन हाहाकार;
छोटा-सा तुम्हारा यह वर्तमान;
विपुल भविष्य में प्रवर्द्धमान;
आज के अपत्य तुम, कल के जनक
एक के अनेक में गणक हो;
सबके सहज साध्य
सबके सदा अवाध्य

आत्मलीन सर्वकाल सर्वात्मीय ;
कौन तव परकीय ?
तुम अपने हो विश्व भर के
पुण्यातिथि भी सदैव घर के;
हे विदेह !
गेही भी सदैव तुम हो अगेह;
फेंक सकते हो तुम्हीं निर्विकार,
मृत्तिका-समान हेम-हीर-मणि-मुक्ता-हार ;
संतत अतुल हे,
जन्मजात उच्च स्वर्गकुल के,
मर्त्य - कुलशाखा में हुए हो गोद
सप्रमोद;
ाल की शुक्ति यह हलकी
ह बड़ी बूंद किसी पुण्य-स्वाति जल की
दुर्लभ सुयोगजन्य
प्राप्त कर तुममें हुई है धन्य-धन्य-धन्य ।
बाल तुम ?—बाल-युवा-वृद्ध नहीं कुछ भी,
पूर्ण विश्व-मानव तभी, तभी;
प्यार - प्रेम - श्रद्धासह
वार - वार प्रणत प्रणाम तुम्हें अहरह ।

('बापू' से)

खिलौना

'मैं तो वही खिलौना लूँगा'
मचल गया दीना का लाल,-
'खेल रहा था जिसको लेकर
राजकुमार उछाल-उछाल

व्यथित हो उठी माँ बेचारी—
'था सुवर्ण-निर्मित वह तो!
खेल इसीसे लाल,—नहीं है
राजा के घर भी यह तो!'

'राजा के घर! नहीं नहीं माँ
तू मुझको बहकाती है;
इस मिट्टी से खेलेगा क्या
राजपुत्र तू ही कह तो।'

फेंक दिया मिट्टी में उसने
मिट्टी का गुड्डा तत्काल;
'मैं तो वही खिलौना लूँगा'—
मचल गया दीना का लाल।

'मैं तो वही खिलौना लूँगा'
मचल गया शिशु राजकुमार,—
'वह बालक पुचकार रहा था
पथ में जिसको बारंबार।'

'वह तो मिट्टी का ही होगा,
खेलो तुम तो सोने से।'
दौड़ पड़े सब दास-दासियाँ
राजपुत्र के रोने से।

'मिट्टी का हो या सोने का,
इनमें वैसा एक नहीं;
खेल रहा था उछल-उछल कर
वह तो उसी खिलौने से।'

राजहठी ने फेंक दिए सब
अपने रजत - हेम - उपहार;
'लूँगा वही, वही लूँगा मैं।'
मचल गया वह राजकुमार।

('मृण्मयी' से)

पूजन

पद-पूजन का भी क्या उपाय ?
तू गौरव-गिरि, उत्तुंगकाय !

तू अमल-धवल है, मैं श्यामल ,
ऊँचे पर हैं तेरे पद-तल ,
यह हूँ मैं नीचे का तृण-दल

पहुँचूँ उन तक किस भाँति हाय !
तू गौरव गिरि, उत्तुंगकाय !

हों शत-शत झंझावात प्रबल ,
फिर भी स्वभावतः तू अविचल ।
मैं तनिक-तनिक में चिर-चंचल ;

मेटूँ कैसे यह अंतराय ?
तू गौरव - गिरि, उत्तुंगकाय !

अविरत तेरा करुणा-निर्झर
अगणित धाराओं से झर-झर ,
जीवित रखता है जीवन भर

मेरा यह जीवन जड़ितप्राय ;
तू गौरव-गिरि, उत्तुंगकाय !

हैं जहाँ अगम्य दिवाकर-कर
तेरे गह्वर भी आकर-वर
हैं ऊँचों से भी ऊँचे पर ,

मन उन तक भी किस भाँति जाय ?
तू गौरव-गिरि, उत्तुंगकाय !

('पाथेय' से)

शंख-नाद

मृत्युंजय, इस घट में अपना
कालकूट भर दे तू आज ;
ओ मंगलमय, पूर्ण, सदाशिव,
रुद्र - रूप धर ले तू आज !

चिर-निद्रित भी जाग उठें हम,
कर दे तू ऐसी हुंकार ;
मद - मत्तों का मद उतार दे
दुर्धर, तेरा दंड - प्रहार।

हम अंधे भी देख सकें कुछ,
धधका दे प्रलय - ज्वाला ;
उसमें पड़कर भस्म शेष हो
है जो जड़ ज़र्जर निस्सार।

यह मृत शांति असह्य हो उठी,
छिन्न इसे कर दे तू आज ;
मृत्युंजय, इस घट में अपना
कालकूट भर दे तू आज !

ओ कठोर, तेरी कठोरता
कर दे हमको कुलिश-कठोर,
विचलित कर न सके कोई भी
झंझा की दारुण झकझोर।

सिर के ऊपर के प्रहार सब
सुमन - समूह - समान झड़ें,
पैरों के नीचे के काँटे
मृदु - मृणाल से जान पड़ें।

भय के दीप्तानल में धँस कर
उसे बुझा दें पैरों से ;

छाती खोल, खुले में अड़कर
विपदाओं के साथ लड़ें।

तेरा सुदृढ़ कवच पहने हम
घूम सकें चाहे जिस ओर;
ओ कठोर, तेरी कठोरता
कर दे हमको कुलिश-कठोर।

ओ दुस्सह, तेरी दुस्सहता
सहज-सह्य हमको हो जाय;
तेरे प्रलय-घनों की धारा
निर्मल कर हमको धो जाय!

अशनि-पात में निर्घोषित हो
विजय-घोष इस जीवन का;
तड़ित्तेज में चिर ज्योतिर्मय
हो उत्थान-पतन तन का।

बंधन-जाल तोड़कर सहसा
इधर-उधर के कूलों का,
तेरी उच्छृंखल वन्या में
पागलपन हो इस मन का।

निजता की संकीर्ण क्षुद्रता
तेरे सुविपुल में खो जाय;
ओ दुस्सह, तेरी दुस्सहता
सहज-सह्य हम को हो जाय।

ओ कृतांत, हमको भी दे जा
निज कृतांतता का कुछ अंश;
नई सृष्टि के नवोल्लास में
फूट पड़े तेरा विभ्रंश।

नव - भूखंड अमृत के घट-सा
दे ऊपर की ओर उछाल,
सागर का अंतस्थल मथकर
तेरे विप्लव का भूचाल।

जीर्ण शीर्णता के दुर्गों को,
कुसंस्कार के स्तूपों को
ढा दे एक साथ ही उठकर
दुर्जय, तेरा क्रोध कराल।

कुछ भी मूल्य नहीं जीवन का
हो यदि उसके पास न ध्वंस;
ओ कृतांत, हमको भी दे जा
निज कृतांतता का कुछ अंश।

ओ भैरव, कवि की वाणी का
मृदु माधुर्य लजा दे आज;
वंशी के ओठों पर अपना
निर्मम शंख बजा दे आज!

नभ को छूकर दूर-दूर तक
गूँज उठे तेरा जय-नाद;
घर के भीतर छिपे पड़े जो
बाहर निकल पड़ें साह्लाद।

तिमिर - सिन्धु में कूँद, तैर कर
सुप्रभाव - से उठ आएँ;
निखिल संकटों के भीतर भी
पाएँ तेरा पुण्य - प्रसाद।

जीवन - रण के योग्य हमारा
निर्भय साज सजा दे आज,
ओ भैरव, कवि की वाणी में
निर्मम शंख बजा दे आज।

('पाथेय' से)

प्रश्न और अभ्यास

१. **'सम्मिलित'** कविता से हमें क्या संदेश मिलता है?

२. **"'बापू' के हास में विश्व हँसता है, और उनके रोदन में विश्व-वेदना का पारावार बसता है"**—इस कथन को स्पष्ट कीजिए।

३. **'खिलौना'** शीर्षक कविता का सारांश देते हुए बताइए कि इसमें बाल-स्वभाव की किस विशेषता का वर्णन किया गया है?

४. **'शंखनाद'** कविता में मंगलमय शिव से रुद्ररूप धारण करने की प्रार्थना क्यों की गई है?

५. निम्नलिखित का आशय स्पष्ट कीजिए:
   (क) **स्वर्ग वसुधा में······महत्तम में।**
   (ख) **आत्मलीन······परकीय।**
   (ग) **गेही भी······मुक्ता-हार।**

६. प्रस्तुत संग्रह में उद्धृत सियारामशरण गुप्त की कौन-सी कविता आपको प्रिय लगती है?

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' का जन्म सन् १८९७ ई० में बंगाल के महिषादल राज्य में हुआ था। इनके पिता ज़िला उन्नाव (उत्तरप्रदेश) के निवासी थे और वे आजीविका के लिए बंगाल चले गए थे। महिषादल में ही इनकी प्रारंभिक शिक्षा हुई। संस्कृत, बंगला और अंग्रेज़ी का अध्ययन इन्होंने घर पर ही किया था। भाषा तथा साहित्य के अतिरिक्त संगीत और दर्शनशास्त्र में इनकी प्रारंभ से रुचि थी। स्वामी रामकृष्ण और विवेकानंद की विचारधारा का इन पर गहरा प्रभाव था। सन् १९६१ ई० में इनका देहावसान हुआ।

निराला की प्रतिभा बहुमुखी थी। कविता के अतिरिक्त इन्होंने उपन्यास, कहानियाँ, निबंध, आलोचना और संस्मरण भी लिखे हैं। मूलतः ये कवि थे और छायावाद के प्रवर्तकों में इनका अन्यतम स्थान है। इनकी कविता के विषयों में भी पर्याप्त विविधता है। शृंगार, प्रेम, रहस्यवाद, राष्ट्र-प्रेम और प्रकृति-वर्णन के अतिरिक्त शोषण के विरुद्ध विद्रोह और मानव के प्रति सहानुभूति का स्वर भी इनके काव्य में पाया जाता है।

निराला का विद्रोही स्वभाव परंपरागत छंद-विधान को स्वीकार नहीं कर सका। इन्होंने 'मुक्त छंद' का विकास किया। प्रारंभ में साहित्य-जगत में इनका घोर विरोध हुआ और इनके मुक्त छंद के उपहासास्पद नाम भी रखे गए। किन्तु निराला विचलित नहीं हुए और अंत में साहित्य-जगत को इनकी प्रतिभा के महत्त्व को स्वीकार करना पड़ा।

निराला की उत्कृष्ट छायावादी कविताओं की भाषा में तत्सम शब्दों का बाहुल्य है। लंबी समस्त पदावली, गहन विचार और लाक्षणिक शैली के कारण इनकी कविता साधारण पाठक को कुछ कठिन प्रतीत होती है। कहीं-कहीं सूक्ष्म दार्शनिकता के कारण भी कविता क्लिष्ट हो गई है। नूतन छंद, नूतन पदावली, नूतन प्रतीक और नूतन अप्रस्तुत योजना के कारण इन्हें हिन्दी का क्रांतिकारी कवि कहा जाता है।

'परिमल', 'गीतिका', 'तुलसीदास', 'अनामिका' आदि निराला की प्रसिद्ध **काव्य-कृतियाँ हैं।**

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

भारती-वंदना

भारति, जय विजयकरे
कनक - शस्य - कमलधरे ।

लंका पदतल - शतदल,
गर्जितोर्मि सागर - जल
धोता शुचि चरण - युगल
स्तव कर बहु - अर्थ - भरे ।

तरु - तृण - वन - लता - वसन,
अंचल में खचित सुमन,
गंगा ज्योतिर्जल - कण
धवल - धार हार गले ।

मुकुट शुभ्र हिम - तुषार,
प्राण प्रणव ओंकार,
ध्वनित दिशाएँ उदार,
शतमुख - शतरव - मुखरे !

('अपरा' से)

जागो फिर एक बार

जागो फिर एक बार ।

समर में अमर कर प्राण,
गान गाए महासिन्धु - से,
सिन्धु - नद - तीरवासी !
सैन्धव तुरंगों पर
चतुरंग - चमू - संग,

"सवा-सवा लाख पर
एक को चढ़ाऊँगा,
गोविन्दसिंह निज
नाम जब कहाऊँगा।"
किसी ने सुनाया यह
वीर - जनमोहन, अति
दुर्जय संग्राम - राग,
फाग था खेला रण
बारहों महीनों में।
शेरों की माँद में,
आया है आज स्यार—
जागो फिर एक बार।

सत् श्री अकाल,
भाल - अनल धक-धक कर जला,
भस्म हो गया था काल,
तीनों गुण ताप त्रय,
अभय हो गए थे तुम,
मृत्युंजय व्योमकेश के समान,
अमृत - संतान ! तीव्र
भेदकर सप्तावरण—मरण-लोक,
शोकहारी ! पहुँचे थे वहाँ,
जहाँ आसन है सहस्रार—
जागो फिर एक बार।

सिंही की गोद से छीनता है शिशु कौन ?
मौन भी क्या रहती वह रहते प्राण ?
रे अजान,
एक मेषमाता ही
रहती है निर्निमेष—

दुर्बल वह—
छिनती संतान जब,
जन्म पर अपने अभिशप्त
तप्त आँसू बहाती है।
किन्तु क्या ?
योग्य जन जीता है,
पश्चिम की उक्ति नहीं,
गीता है, गीता है,
स्मरण करो बार बार—
जागो फिर एक बार।

पशु नहीं, वीर तुम;
समर-शूर, क्रूर नहीं;
कालचक्र में हो दबे,
आज तुम राजकुँअर,
समर सरताज।
मुक्त हो सदा ही तुम,
बाधा-विहीन-बंध छंद ज्यों,
डूबे आनंद में सच्चिदानंद - रूप।
महा-मंत्र ऋषियों का
अणुओं परमाणुओं में फूँका हुआ,
"तुम हो महान
तुम सदा हो महान,
है नश्वर यह दीनभाव,
कायरता, कामपरता,
ब्रह्म हो तुम,
पदरज भर भी है नहीं,
पूरा यह विश्वभार"—
जागो फिर एक बार।

('अपरा' से)

भिक्षुक

वह आता--
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।
पेट - पीठ दोनों मिलकर हैं एक
चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठीभर दाने को--भूख मिटाने को
मुँह फटी-पुरानी झोली का फैलाता---
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।
साथ दो बच्चे भी हैं सदा हाथ फैलाए,
बाँएँ से वे मलते हुए पेट चलते हैं,
और दाहिना दया-दृष्टि पाने की ओर बढ़ाए।
भूख से सूख ओंठ जब जाते,
दाता--भाग्य-विधाता से क्या पाते ?--
घूँट आँसुओं के पीकर रह जाते।
चाट रहे हैं जूठी पत्तल कभी सड़क पर खड़े हुए,
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी हैं अड़े हुए।

('अपरा' से)

संध्या-सुंदरी

दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह संध्या-सुंदरी परी-सी
धीरे धीरे धीरे,
तिमिरांचल में चंचलता का नहीं कहीं आभास,
मधुर मधुर हैं दोनों उसके अधर,--
किन्तु गंभीर,--नहीं है उनमें हास-विलास।
हँसता है तो केवल तारा एक
गुँथा हुआ उन घुँघराले काले-काले बालों से,

हृदय-राज्य की रानी का वह करता है अभिषेक।
अलसता की-सी लता
किन्तु कोमलता की वह कली,
सखी नीरवता के कंधे पर डाले बाँह,
छाँह-सी अंबर-पथ से चली।
नहीं बजती उसके हाथों में कोई वीणा,
नहीं होता कोई अनुराग-राग-आलाप,
नूपुरों में भी रुनझुन-रुनझुन नहीं,
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द-सा "चुप चुप चुप"
है गूँज रहा सब कहीं--
व्योममंडल में--जगतीतल में--
सोती शांत सरोवर पर उस अमल कमलिनी-दल में--
सौन्दर्य-गर्विता-सरिता के अतिविस्तृत वक्षःस्थल में--
धीर वीर गंभीर शिखर पर हिमगिरि-अटल-अचल में--
उत्ताल-तरंगाघात-प्रलय-घन-गर्जन-जलधि-प्रबल में--
क्षिति में--जल में--नभ में--अनिल-अनल में--
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द-सा "चुप चुप चुप"
है गूँज रहा सब कहीं,--
और क्या है ? कुछ नहीं।
मदिरा की वह नदी बहाती आती,
थके हुए जीवों को वह सस्नेह
प्याला एक पिलाती
सुलाती उन्हें अंक पर अपने,
दिखलाती फिर विस्मृति के वह कितने मीठे सपने।
अर्द्धरात्रि की निश्चलता में हो जाती जब लीन,
कवि का बढ़ जाता अनुराग,
विरहाकुल कमनीय कंठ से
आप निकल पड़ता तब एक बिहाग।

('अपरा' से)

खँडहर के प्रति

खँडहर ! खड़े हो तुम आज भी ?
अद्भुत अज्ञात उस पुरातन के मलिन साज !
विस्मृति की नींद से जगाते हो क्यों हमें--
करुणाकर, करुणामय गीत सदा गाते हुए ?
पवन-संचरण के साथ ही
परिमल-पराग-सम अतीत की विभूति-रज--
आशीर्वाद पुरुष-पुरातन का
भेजते सब देशों में,
क्या है उद्देश तव ?
बंधन-विहीन भव ।
ढीले करते हो भव-बंधन नर-नारियों के ?
अथवा,
हो मलते कलेजा पड़े, जरा-जीर्ण,
निर्निमेष नयनों से
बाट जोहते हो तुम मृत्यु की
अपनी संतानों से बूँद भर पानी को तरसते हुए ?
किंवा, हे यशोराशि !
कहते हो आँसू बहाते हुए--
'आर्त भारत ! जनक हूँ मैं
जैमिनि-पतंजलि-व्यास ऋषियों का;
मेरी ही गोद पर शैशव-विनोद कर
तेरा है बढ़ाया मान
राम-कृष्ण-भीमार्जुन-भीष्म-नरदेवों ने ।
तुमने मुख फेर लिया,
सुख की तृष्णा से अपनाया है गरल;
हो बसे नव छाया में,
नव स्वप्न ले जगे,
भूले वे मुक्त प्राण, साम-गान, सुधा-पान ।

बरसो आशीष, हे पुरुष-पुराण,
तव चरणों में प्रणाम है।

('अपरा' से)

भगवान बुद्ध के प्रति

आज सभ्यता के वैज्ञानिक जड़ विकास पर
गर्वित विश्व नष्ट होने की ओर अग्रसर
स्पष्ट दिख रहा; सुख के लिए खिलौना जैसे
बने हुए वैज्ञानिक साधन; केवल पैसे
आज लक्ष्य में हैं मानव के; स्थल-जल-अंबर
रेल तार-बिजली-जहाज नभयानों से भर
दर्प कर रहे हैं मानव, वर्ग से वर्गगण,
भिड़े राष्ट्र से राष्ट्र, स्वार्थ से स्वार्थ विचक्षण।
हँसते हैं जड़वादग्रस्त, प्रेत ज्यों परस्पर,
विकृत-नयन मुख, कहते हुए, अतीत भयंकर
था मानव के लिए, पतित था वहाँ विश्वमन,
अपटु अशिक्षित वन्य हमारे रहे बंधुगण;
नहीं वहाँ था कहीं आज का मुक्त प्राण यह,
तर्कसिद्ध है, स्वप्न एक है विनिर्वाण यह।
वहाँ बिना कुछ कहे, सत्य-वाणी के मंदिर,
जैसे उतरे थे, तुम उतर रहे हो फिर-फिर
मानव के मन में,—जैसे जीवन में निश्चित
विमुख भोग से, राजकुँअर, त्यागकर सर्वस्थित
एक मात्र सत्य के लिए, रूढ़ि से विमुख, रत
कठिन तपस्या में, पहुँचे लक्ष्य को, तथागत।
फूटी ज्योति विश्व में, मानव हुए सम्मिलित,
धीरे धीरे हुए विरोधी भाव तिरोहित;

भिन्न रूप से भिन्न-भिन्न धर्मों में संचित
हुए भाव, मानव न रहे करुणा से वंचित ;
फूटे शत-शत उत्स सहज मानवता-जल के
यहाँ-वहाँ पृथ्वी के सब देशों में छलके ;
छल के, बल के पंकिल भौतिक रूप अदर्शित
हुए तुम्हीं से, हुई तुम्हीं से ज्योति प्रदर्शित ।

('अपरा' से)

प्रश्न और अभ्यास

१. **'जागो फिर एक बार'** कविता में किस भाव की अभिव्यक्ति हुई है और उससे हमें क्या प्रेरणा मिलती है ?
२. कविता के आधार पर भिक्षुक का वर्णन अपने शब्दों में कीजिए ।
३. **'संध्या-सुंदरी'** कविता में कवि ने संध्या की उपमा परी से किन गुणों के आधार पर दी है ? इस कविता से रूपक के कुछ उदाहरण चुनिए ।
४. प्राचीन खँडहर हमें क्या संदेश देते हैं ?
५. निराला की कविताओं में से मध्यवर्ती तुकों के तीन प्रयोग चुनकर लिखिए (जैसे—मेरी ही **गोद** पर शैशव **विनोद** कर) ।
६. आशय स्पष्ट कीजिए :

   (क) लंका पदतल······अर्थ भरे ।
   (ख) मुक्त हो सदा······यह विश्वभार ।
   (ग) व्योम-मंडल में······सब कहीं ।
   (घ) आज सभ्यता······विचक्षण ।

सुमित्रानंदन पंत

पंत जी का जन्म सन् १९०० ई० में अल्मोड़ा (उत्तरप्रदेश) के निकटस्थ कौसानी नामक ग्राम में हुआ था। जन्म के ६ घंटे उपरांत ही माता की स्नेहमयी गोद से इन्हें वंचित होना पड़ा। वाराणसी से हाई स्कूल की परीक्षा पास करके ये प्रयाग के म्योर सैण्ट्रल कालेज में प्रविष्ट हुए, लेकिन असहयोग आंदोलन प्रारंभ होने पर इन्होंने सन् १९२१ ई० में कालेज छोड़ दिया और साहित्य-साधना में प्रवृत्त हो गए। **साहित्य अकादमी** ने इन्हें ५००० रुपए के पुरस्कार से तथा भारत सरकार ने **पद्मभूषण** अलंकार से सम्मानित किया है।

प्रसाद और 'निराला' की भाँति पंत जी भी छायावाद के आधारस्तंभ हैं। छायावाद अपनी पूरी समृद्धि के साथ इनके काव्य में प्रतिफलित हुआ है। इनकी कविताओं में प्रकृति के बड़े मनोरम चित्र मिलते हैं। अतएव इन्हें 'प्रकृति का सुकुमार कवि' कहा जाता है। छायावादी काव्य के प्रवर्तक कवियों में पंत जी का महत्त्वपूर्ण स्थान है, किन्तु हिन्दी में प्रगतिवादी काव्य का सूत्रपात करनेवाले कवियों में भी पंत जी प्रमुख हैं। हिन्दी-काव्य में प्रगतिवादी विचारधारा का संयत एवं संतुलित रूप पंत जी की रचनाओं में ही पाया जाता है।

काव्य-कला की दृष्टि से पंत जी प्रथम श्रेणी के कवियों में हैं। इनके काव्य में सर्वप्रथम कला का, उसके उपरांत विचारों का और अंत में भावों का स्थान रहता है। तात्पर्य यह कि इनके काव्य में शिल्प का बहुत महत्त्व है। पंत जी की भाषा अत्यंत चित्रमयी एवं अलंकृत है जिसमें प्रत्येक शब्द का अपना विशिष्ट महत्त्व रहता है। विविध वर्ण, गंध, ध्वनि-नाद का इन्होंने अपनी कविता में सजीव चित्रण किया है। काव्य-धारा को प्राचीन रूढ़ियों से मुक्त कर नवीन दिशा की ओर मोड़ने तथा खड़ीबोली को रमणीय रूप प्रदान करने में पंत जी का विशेष योगदान है। **'पल्लव'**, **'गुंजन'**, **'युगांत'**, **'ग्राम्या'**, **'स्वर्णकिरण'**, **'उत्तरा'**, **'अतिमा'**, **'कला और बूढ़ा चाँद'** आदि पंत जी के प्रसिद्ध काव्य-ग्रंथ हैं।
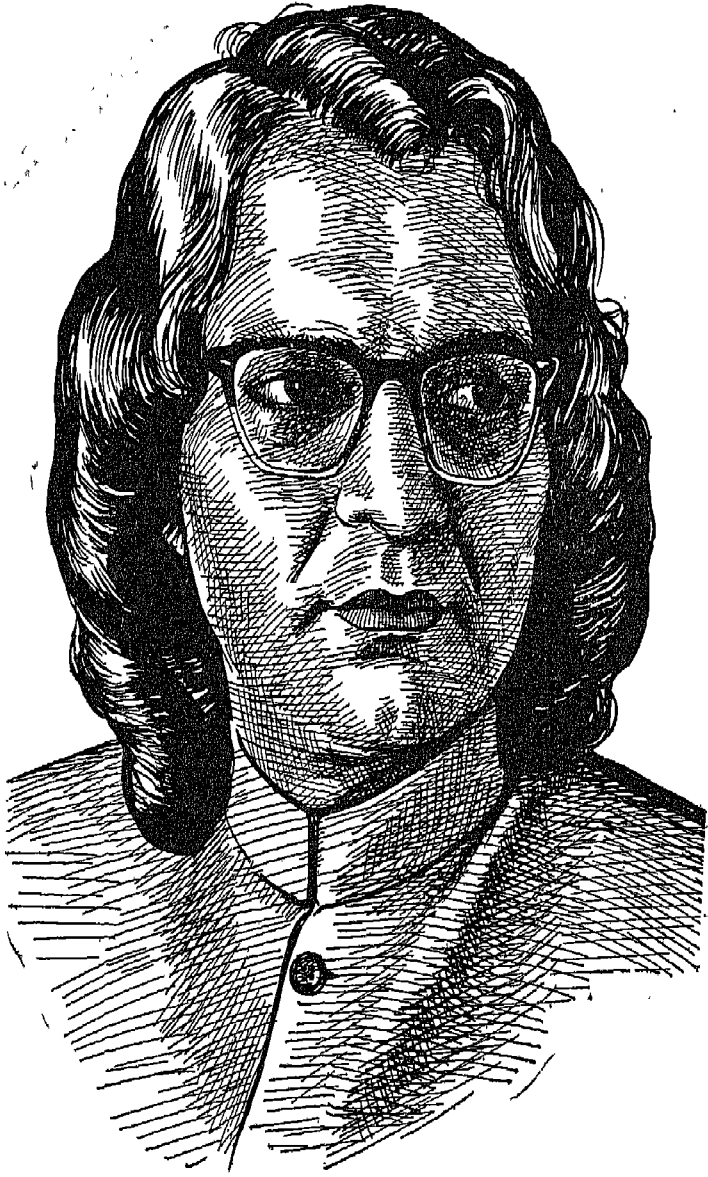
सुमित्रानंदन पंत

प्रथम रश्मि

प्रथम रश्मि का आना रंगिणि !
तूने कैसे पहचाना ?
कहाँ, कहाँ हे बाल-विहंगिनि !
पाया, तूने यह गाना ?

सोई थी तू स्वप्न-नीड़ में
पंखों के सुख में छिपकर,
झूम रहे थे, घूम द्वार पर,
प्रहरी-से जुगनू नाना;
शशि-किरणों से उतर उतरकर
भू पर कामरूप नभचर
चूम नवल-कलियों का मृदु मुख
सिखा रहे थे मुसकाना;
स्नेहहीन तारों के दीपक,
श्वास-शून्य थे तरु के पात,
विचर रहे थे स्वप्न अवनि में,
तम ने था मंडप ताना;

कूक उठी सहसा तरुवासिनि !
गा तू स्वागत का गाना,
किसने तुझ को अंतर्यामिनि !
बतलाया उसका आना ?

निकल सृष्टि के अंध गर्भ से
छाया-तन बहु छायाहीन,
चक्र रच रहे थे खल निशिचर
चला कुहुक, टोना माना;

छिपा रही थी मुख शशिबाला
निशि के श्रम से हो श्री-हीन,
कमल-क्रोड में बंदी था अलि
कोक शोक से दीवाना!
मूर्छित थीं इंद्रियाँ, स्तब्ध जग,
जड़-चेतन सब एकाकार,
शून्य विश्व के उर में केवल
साँसों का आना-जाना;

तूने ही पहले बहु-दर्शिनि!
गाया जागृति का गाना,
श्री-सुख-सौरभ का नभचारिणि!
गूँथ दिया ताना-बाना!

निराकार तम मानो सहसा
ज्योति-पुंज में हो साकार,
बदल गया द्रुत जगत-जाल में
धरकर नाम - रूप नाना;
सिहर उठे पुलकित हो द्रुम-दल,
सुप्त समीरण हुआ अधीर,
झलका हास कुसुम-अधरों पर
हिल मोती का सा दाना;
खुले पलक, फैली सुवर्ण-छवि,
जगी सुरभि, डोले मधुबाल,
स्पंदन-कंपन औ' नव जीवन
सीखा जग ने अपनाना;

प्रथम रश्मि का आना रंगिणि!
तूने कैसे पहचाना?
कहाँ, कहाँ हे बाल-विहंगिनि!
पाया यह स्वर्गिक गाना?

('पल्लविनी' से)

बादल

सुरपति के हम ही हैं अनुचर,
जगत्प्राण के भी सहचर;
मेघदूत की सजल कल्पना,
चातक के प्रिय जीवनधर;

जलाशयों में कमल दलों-सा
हमें खिलाता नित दिनकर
पर बालक-सा वायु सकल दल
बिखरा देता, चुन सत्वर;

लघु लहरों के चल पलनों में
हमें झुलाता जब सागर,
वही चील-सा झपट, बाँह गह,
हमको ले जाता ऊपर।

भूमि गर्भ में छिप विहंग-से,
फैला कोमल रोमिल पंख,
हम असंख्य अस्फुट बीजों में
सेते साँस, छुड़ा जड़ पंक;

विपुल कल्पना-से त्रिभुवन की
विविध रूप धर, भर नभ अंक,
हम फिर क्रीड़ा कौतुक करते,
छा अनंत उर में निःशंक!

कभी चौकड़ी भरते मृग-से
भू पर चरण नहीं धरते,
मत्त मतंगज कभी झूमते,
सजग शशक नभ को चरते;

कभी अचानक, भूतों का-सा
प्रकटा विकट महा आकार,

कड़क-कड़क जब हँसते हम सब,
थर्रा उठता है संसार;

फिर परियों के बच्चों-से हम
सुभग सीप के पंख पसार,
समुद पैरते शुचि ज्योत्स्ना में,
पकड़ इंदु के कर सुकुमार।

अनिल विलोड़ित गगन-सिन्धु में
प्रलय बाढ़-से चारों ओर
उमड़-उमड़ हम लहराते हैं
बरसा उपल, तिमिर, घनघोर

बात-बात में, तूल तोम-सा
व्योम विटप से झटक, झकोर,
हमें उड़ा ले जाता जब द्रुत
दल-बल-युत घुस बातुल चोर।

व्योम-विपिन में जब वसंत-सा
खिलता नव पल्लवित प्रभात,
बहते हम तब अनिल-स्रोत में
गिर तमाल-तम के-से पात;

उदयाचल से बाल-हंस फिर
उड़ता अंबर में अवदात,
फैल स्वर्ण पंखों-से हम भी,
करते द्रुत मारुत से बात!

धीरे-धीरे संशय-से उठ,
बढ़ अपयश-से शीघ्र अछोर,
नभ के उर में उमड़ मोह-से
फैल लालसा-से निशि-भोर;

इंद्रचाप-सी व्योम-भृकुटि पर
लटक मौन चिन्ता से घोर,
घोष भरे विप्लव-भय-से हम
छा जाते द्रुत चारों ओर!

पर्वत से लघु धूलि, धूलि से
पर्वत बन, पल में, साकार—
काल-चक्र-से चढ़ते, गिरते
पल में जलधर, फिर जल धार ;

कभी हवा में महल बनाकर,
सेतु बाँधकर कभी अपार,
हम विलीन हो जाते सहसा
विभव-भूति ही-से निस्सार।

धूम-धुँआरे, काजर-कारे,
हम ही विकरारे बादर,
मदन राज के वीर बहादर,
पावस के उड़ते फणिधर ;

चमक झमकमय मंत्र वशीकर,
छहर घहरमय विष सीकर,
स्वर्ग-सेतु-से इंद्रधनुष-धर,
कामरूप घनश्याम अमर।

('पल्लव' से)

मैं नहीं चाहता चिर सुख

मैं नहीं चाहता चिर सुख,
मैं नहीं चाहता चिर दुख;
सुख-दुख की खेल मिचौनी
खोले जीवन अपना मुख!

सुख-दुख के मधुर मिलन से
यह जीवन हो परिपूरन,
फिर घन में ओझल हो शशि,
फिर शशि से ओझल हो घन !

जग पीड़ित है अति दुख से
जग पीड़ित रे अति सुख से,
मानव-जग में बँट जाएँ
दुख-सुख से औ' सुख-दुख से।

अविरत दुख है उत्पीड़न,
अविरत सुख भी उत्पीड़न,
दुख-सुख की निशा-दिवा में,
सोता-जगता जग-जीवन।

यह साँझ-उषा का आँगन,
आलिंगन विरह-मिलन का;
चिरहास अश्रुमय आनन
रे इस मानव जीवन का।

('गुंजन' से)

आः धरती कितना देती है

मैंने छुटपन में छिपकर पैसे बोए थे
सोचा था, पैसों के प्यारे पेड़ उगेंगे,
रुपयों की कलदार मधुर फ़सलें खनकेंगी,
और, फूल फलकर, मैं मोटा सेठ बनूँगा !
पर बंजर धरती में एक न अंकुर फूटा,
बंध्या मिट्टी ने न एक भी पैसा उगला।
सपने जाने कहाँ मिटे, कब धूल हो गए !

मैं हताश हो, बाट जोहता रहा दिनों तक,
बाल कल्पना के अपलक पाँवड़े बिछाकर।
मैं अबोध था, मैंने गलत बीज बोए थे,
ममता को रोपा था, तृष्णा को सींचा था।

अर्धशती हहराती निकल गई है तब से!
कितने ही मधु पतझर बीत गए अनजाने,
ग्रीष्म तपे, वर्षा झूलीं, शरदें मुसकाईं,
सी-सी कर हेमंत कँपे, तरु झरे, खिले वन!

औ' जब फिर से गाढ़ी ऊदी लालसा लिए,
गहरे कजरारे बादल बरसे धरती पर।
मैंने, कौतूहलवश, आँगन के कोने की
गीली तह को यों ही उँगली से सहलाकर
बीज सेम के दबा दिए मिट्टी के नीचे!
भू के अंचल में मणि माणिक बाँध दिए हों।

मैं फिर भूल गया इस छोटी-सी घटना को,
और बात भी क्या थी, याद जिसे रखता मन!
किन्तु एक दिन, जब मैं संध्या को आँगन में
टहल रहा था,—तब सहसा मैंने जो देखा,
उससे हर्ष विमूढ़ हो उठा मैं विस्मय से।

देखा, आँगन के कोने में कई नवागत
छोटी-छोटी छाता ताने खड़े हुए हैं।
छाता कहूँ कि विजय पताकाएँ जीवन की;
या हथेलियाँ खोले थे वे नन्हीं, प्यारी,—
जो भी हो, वे हरे-हरे उल्लास से भरे
पंख मारकर उड़ने को उत्सुक लगते थे,
डिम्ब तोड़कर निकले चिड़ियों के बच्चे-से!

निर्निमेष, क्षण भर, मैं उनको रहा देखता—
सहसा मुझे स्मरण हो आया,—कुछ दिन पहिले,

बीज सेम के रोपे थे मैंने आँगन में
और उन्हीं से बौने पौधों की यह पलटन
मेरी आँखों के सम्मुख अब खड़ी गर्व से,
नन्हे नाटे पैर पटक, बढ़ती जाती है।

तब से उनको रहा देखता,—धीरे धीरे
अनगिनती पत्तों से लद भर गईं झाड़ियाँ,
हरे भरे टँग गए कई मखमली चँदोवे।
बेलें फैल गईं बल खा, आँगन में लहरा,—
और सहारा लेकर बाड़े की टट्टी का
हरे-हरे सौ झरने फूट पड़े ऊपर को!
मैं अवाक् रह गया वंश कैसे बढ़ता है!

छोटे, तारों-से छितरे, फूलों के छींटे
झागों-से लिपटे लहरी-श्यामल लतरों पर
सुंदर लगते थे, मावस के हँसमुख नभ-से,
चोटी के मोती-से, आँचल के बूटों-से!

ओह, समय पर उनमें कितनी फलियाँ टूटीं।
कितनी सारी फलियाँ, कितनी प्यारी फलियाँ,
पतली चौड़ी फलियाँ—उफ़, उनकी क्या गिनती!
लंबी-लंबी अंगुलियों सी, नन्हीं-नन्हीं
तलवारों सी, पन्ने के प्यारे हारों सी,
झूठ न समझें, चंद्र कलाओं-सी नित बढ़ती,
सच्चे मोती की लड़ियों-सी, ढेर-ढेर खिल,
झुंड-झुंड झिलमिलकर कचपचिया तारों-सी!

आः, इतनी फलियाँ टूटीं, जाड़ों भर खाईं,
सुबह शाम घर-घर में पकीं, पड़ोस पास के
जाने अनजाने सब लोगों में बँटवाईं,
बंधु-बांधवों, मित्रों, अभ्यागत, मँगतों ने,
जी भरभर दिन रात मुहल्ले भर ने खाईं!
कितनी सारी फलियाँ कितनी प्यारी फलियाँ

यह धरती कितना देती है ! धरती माता
कितना देती है अपने प्यारे पुत्रों को !
नहीं समझ पाया था मैं उसके महत्त्व को !
बचपन में, छिः, स्वार्थ लोभवश पैसे बोकर !

रत्न प्रसविनी है वसुधा, अब समझ सका हूँ ।
इसमें सच्ची समता के दाने बोने हैं,
इसमें जन की क्षमता के दाने बोने हैं,
इसमें मानव ममता के दाने बोने हैं,
जिससे उगल सकें फिर धूल सुनहली फ़सलें
मानवता की—जीवन श्रम से हँसें दिशाएँ !
हम जैसा बोएँगे वैसा ही पाएँगे ।

('आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि : सुमित्रानंदन पंत' से)

नौका-विहार

शांत, स्निग्ध, ज्योत्स्ना उज्ज्वल !
अपलक, अनंत, नीरव भूतल !

सैकत शय्या पर दुग्ध धवल, तन्वंगी गंगा, ग्रीष्म विरल,
लेटी है श्रांत, क्लांत, निश्चल !

तापस बाला गंगा निर्मल, शशि-मुख से दीपित मृदु करतल,
लहरे उर पर कोमल कुंतल !

गोरे अंगों पर सिहर-सिहर, लहराता तार-तरल सुंदर
चंचल अंचल-सा नीलांबर !

साड़ी की सिकुड़न-सी जिस पर, शशि की रेशमी विभा से भर,
सिमटी है वर्तुल, मृदुल लहर !

चाँदनी रात का प्रथम प्रहर,
हम चले नाव लेकर सत्वर !

सिकता की सस्मित सीपी पर मोती की ज्योत्स्ना रही विचर,
लो, पालें चढ़ीं, उठा लंगर !

मृदु मंद-मंद, मंथर-मंथर, लघु तरणि, हंसिनी-सी सुंदर
तिर रही, खोल पालों के पर !

निश्चल जल के शुचि दर्पण पर बिम्बित हो रजत पुलिन निर्भर
दुहरे ऊँचे लगते क्षण भर !

कालाकाँकर का राजभवन सोया जल में निश्चिन्त, प्रमन,
पलकों में वैभव-स्वप्न सघन !

नौका से उठतीं जल हिलोर,
हिल पड़ते नभ के ओर-छोर !

विस्फारित नयनों से निश्चल कुछ खोज रहे चल तारक दल
ज्योतित कर नभ का अंतस्तल,

जिनके लघु दीपों को चंचल, अंचल की ओट किए अविरल
फिरतीं लहरें लुक-छिप पल-पल !

सामने शुक्र की छवि झलमल, पैरती परी-सी जल में कल,
रुपहरे कचों में हो ओझल !

लहरों के घूँघट से झुक-झुक दशमी का शशि निज तिर्यक् मुख
दिखलाता, मुग्धा सा रुक-रुक !

अब पहुँची चपला बीच धार,
छिप गया चाँदनी का कगार !

दो बाँहों-से दूरस्थ तीर धारा का कृश कोमल शरीर
आलिंगन करने को अधीर !

अति दूर, क्षितिज पर विटप-माल लगती भ्रू-रेख सी अराल,
अपलक-नभ नील-नयन विशाल;

मा के उर पर शिशु-सा, समीप, सोया धारा में एक द्वीप,
ऊर्मिल प्रवाह को कर प्रतीप;

वह कौन विहग ? क्या विकल कोक, उड़ता हरने निज विरह शोक ?
छाया की कोकी को विलोक !

पतवार घुमा, अब प्रतनु भार
नौका घूमी विपरीत धार !

डाँड़ों के चल करतल पसार, भर-भर मुक्ताफल फेन-स्फार,
बिखराती जल में तार-हार !

चाँदी के साँपों-सी रलमल नाचतीं रश्मियाँ जल में चल
रेखाओं-सी खिंच तरल-सरल !

लहरों की लतिकाओं में खिल, सौ-सौ शशि, सौ-सौ उडु झिलमिल
फैले फूले जल में फेनिल !

अब उथला सरिता का प्रवाह, लग्गी से ले-ले सहज थाह,
हम बढ़े घाट को सहोत्साह !
ज्यों-ज्यों लगती है नाव पार
उर में आलोकित शत विचार !

इस धारा-सा ही जग का क्रम, शाश्वत इस जीवन का उद्गम
शाश्वत है गति, शाश्वत संगम !

शाश्वत नभ का नीला विकास, शाश्वत शशि का यह रजत हास,
शाश्वत लघु लहरों का विलास !

हे जग-जीवन के कर्णधार ! चिर जन्म-मरण के आर-पार
शाश्वत जीवन-नौका विहार !

मैं भूल गया अस्तित्व-ज्ञान, जीवन का यह शाश्वत प्रमाण
करता मुझ को अमरत्व दान !

('गुंजन' से)

प्रश्न और अभ्यास

१. **'बादल'** कविता में बादल किन रूपों में अपना परिचय देता है ? उनमें से किन्हीं तीन का वर्णन कीजिए ।
२. **'सुख-दुख की खेल मिचौनी'** से कवि का क्या तात्पर्य है ? वह किस प्रकार इन दोनों का संतुलन करना चाहता है ?

३. '**आः धरती कितना देती है**' कविता का मूल भाव स्पष्ट कीजिए

४. ग्रीष्मऋतु की तन्वंगी गंगा का चित्रण करने के लिए कवि ने किन उपमानों का प्रयोग किया है ?

५. पंत जी की कविताओं में से शब्द-संगीत और चित्र-योजना के तीन-तीन उदाहरण चुनकर लिखिए, जैसे : शब्द-संगीत—**मृदु मंद-मंद, मंथर-मंथर।** चित्र-योजना—**सैकत शय्या पर दुग्ध धवल—लेटी है श्रांत क्लांत निश्चल।**

६. निम्नलिखित अवतरणों का भाव स्पष्ट कीजिए :

(क) **शशि किरणों........मंडप ताना।**

(ख) **अविरत दुख........जगजीवन।**

(ग) **सैकत शय्या........कोमल कुंतल।**

निम्नलिखित विशेषणों के सौन्दर्य को स्पष्ट कीजिए :

अंध गर्भ, रेशमी विभा, सस्मित सीपी, मेघदूत की सजल कल्पना।

महादेवी वर्मा

महादेवी वर्मा का जन्म उत्तरप्रदेश के फर्रुखाबाद नगर में सन् १९०७ ई० में हुआ था। इनके पिता श्री गोविन्दसहाय वर्मा इंदौर के एक कालेज में अध्यापक थे और माता धर्मपरायण महिला थीं। माता से रामायण और महाभारत की कथाएँ सुनते रहने के कारण शैशव से ही महादेवी जी के मन में साहित्य के प्रति आकर्षण उत्पन्न हो गया था। इन्होंने प्रयाग विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम० ए० किया। दर्शन का महादेवी जी ने विशेष अध्ययन किया और संगीत तथा चित्रकला में भी इनकी अभिरुचि है। इस समय ये प्रयाग महिला विद्यापीठ की आचार्या हैं। भारत सरकार ने साहित्य-सेवा के लिए महादेवी जी को **पद्मभूषण** से अलंकृत किया है।

महादेवी जी ने मुख्यतः गीतों की रचना की है जिनमें वेदना की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। इनके गीतों के मूल में प्रायः एक ही भाव है : असीम अगोचर और परोक्ष प्रिय के प्रति प्रणय-निवेदन। कवयित्री की विरह-विकल आत्मा दीपशिखा के समान अविराम जलती है। वेदना की अग्नि में मन का सारा कलुष भस्म हो जाता है, अतः ये सहर्ष उसका वरण करती हैं—**'तुम को पीड़ा में ढूँढ़ा, तुममें ढूँढ़ूँगी पीड़ा।'**

महादेवी वर्मा ने स्निग्ध और सरल तत्सम-प्रधान भाषा का प्रयोग किया है। साहित्य और संगीत का जैसा मणि-कांचन योग इनके गीतों में मिलता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। कवयित्री के अतिरिक्त ये प्रौढ़ गद्य-लेखिका भी हैं—इनका-सा श्रेष्ठ गद्य वास्तव में बहुत कम कवियों ने लिखा है।

'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा', 'सांध्यगीत' (जो 'यामा' में संकलित हैं) तथा **'दीपशिखा'** कवयित्री की प्रसिद्ध काव्य-कृतियाँ हैं।

महादेवी वर्मा

(१)

जो तुम आ जाते एक बार

कितनी करुणा कितने संदेश
पथ में बिछ जाते बन पराग ;
गाता प्राणों का तार तार
अनुराग भरा उन्माद राग ;
आँसू लेते वे पद पखार ।

हँस उठते पल में आर्द्र नैन
धुल जाता ओठों से विषाद,
छा जाता जीवन में वसंत
लुट जाता चिर संचित विराग ;
आँखें देतीं सर्वस्व वार ।

('नीहार' से)

(२)

रूपसि तेरा घन - केश - पाश ।
श्यामल श्यामल कोमल कोमल,
लहराता सुरभित केश-पाश !

नभगंगा की रजत धार में,
धो आई क्या इन्हें रात ?
कंपित हैं तेरे सजल अंग,
सिहरा - सा तन है सद्यस्नात !
भीगी अलकों के छोरों से
चूतीं बूँदें कर विविध लास ।
रूपसि तेरा घन - केश - पाश !

सौरभभीना झीना गीला
लिपटा मृदु अंजन - सा दुकूल;
चल अंचल से झर झर झरता
पथ में जुगनू के स्वर्ण-फूल;
दीपक-से देता बार बार
तेरा उज्ज्वल चितवन-विलास !
रूपसि तेरा घन - केश - पाश !

उच्छ्‌वसित वक्ष पर चंचल है
वक-पाँतों का अरविन्द - हार;
तेरी निश्वासें छू भू को
बन बन जातीं मलयज बयार;
केकी - रव की नूपुर - ध्वनि सुन
जगती जगती की मूक प्यास।
रूपसि तेरा घन - केश - पाश !

इन स्निग्ध लटों से छा दे तन,
पुलकित अंकों में भर विशाल;
झुक सस्मित शीतल चुंबन से
अंकित कर इसका मृदुल भाल;
दुलरा दे ना बहला दे ना
यह तेरा शिशु जग है उदास।
रूपसि तेरा घन - केश - पाश।

('नीरजा' से)

(३)

मधुर मधुर मेरे दीपक जल !
युग युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल,
प्रियतम का पथ आलोकित कर।

सौरभ फैला विपुल धूप बन,
मृदुल मोम-सा घुल रे मृदु तन;
दे प्रकाश का सिन्धु अपरिमित,
तेरे जीवन का अणु गल गल ।

पुलक पुलक मेरे दीपक जल !
सारे शीतल कोमल नूतन,
माँग रहे तुझ से ज्वाला-कण;
विश्व-शलभ सिर धुन कहता 'मैं
हाय न जल पाया तुझमें मिल' ।

सिहर सिहर मेरे दीपक जल !
जलते नभ में देख असंख्यक,
स्नेहहीन नित कितने दीपक;
जलमय सागर का उर जलता,
विद्युत ले घिरता है बादल !

विहँस विहँस मेरे दीपक जल !
द्रुम के अंग हरित कोमलतम,
ज्वाला को करते हृदयंगम;
वसुधा के जड़ अंतर में भी,
बंदी है तापों की हलचल !

बिखर बिखर मेरे दीपक जल !
मेरी निश्वासों से द्रुततर,
सुभग न तू बुझने का भय कर;
मैं अंचल की ओट किए हूँ,
अपनी मृदु पलकों से चंचल !

सहज सहज मेरे दीपक जल !
सीमा ही लघुता का बंधन,
हे अनादि तू मत घड़ियाँ गिन,

मैं दृग के अक्षय कोषों से—
तुझमें भरती हूँ आँसू-जल !
सजल सजल मेरे दीपक जल !

तम असीम तेरा प्रकाश चिर,
खेलेंगे नव खेल निरंतर;
तम के अणु अणु में विद्युत-सा—
अमिट चित्र अंकित करता चल
सरल सरल मेरे दीपक जल !

तू जल जल जितना होता क्षय,
वह समीप आता छलनामय;
मधुर मिलन में मिट जाना तू—
उसकी उज्ज्वल स्मित में घुल खिल !
मदिर मदिर मेरे दीपक जल !
प्रियतम का पथ आलोकित कर !

('नीरजा' से)

(४)

हे चिर महान !
यह स्वर्णरश्मि छू श्वेतभाल,
बरसा जाती रंगीन हास;
सेली बनता है इंद्रधनुष
परिमल मल मल जाता बतास ।
पर रागहीन तू हिमनिधान !

नभ में गर्वित झुकता न शीश,
पर अंक लिए है दीन क्षार;

मन गल जाता नत विश्व देख,
तन सह लेता है कुलिश-भार !
कितने मृदु कितने कठिन प्राण ।
टूटी है कब तेरी समाधि,
झंझा लौटे शत हार-हार;
बह चला दृगों से किन्तु नीर,
सुनकर जलते कण की पुकार !
सुख से विरक्त दुख में समान !
मेरे जीवन का आज मूक,
तेरी छाया से हो मिलाप;
तन तेरी साधकता छू ले,
मन में करुणा की थाह नाप ।
उर में पावस दृग में विहान !

('यामा' से)

(५)

जाग बेसुध जाग !
अश्रुकण से उर सजाया त्याग हीरक-हार,
भीख दुख की माँगने फिर जो गया प्रतिद्वार;
शूल जिसने फूल छू चंदन किया, संताप,
सुन जगाती है उसी सिद्धार्थ की पद-चाप;
करुणा के दुलारे जाग !

शंख में ले नाश मुरली में छिपा वरदान,
दृष्टि में जीवन अधर में सृष्टि ले छबिमान
आ रचा जिसने स्वरों में प्यार का संसार,
गूँजती प्रतिध्वनि उसी की फिर क्षितिज के पार;
वृंदाविपिन वाले जाग !

रात के पथहीन तम में मधुर जिसके श्वास,
फैले भरते लघु कणों में भी असीम सुवास,
कंटकों की सेज जिसकी आँसुओं का ताज,
सुभग, हँस उठ, उस प्रफुल्ल गुलाब ही-सा आज,
बीती रजनि प्यारे जाग !

('नीरजा' से)

प्रश्न और अभ्यास

१. **'हे चिर महान'** शीर्षक कविता किसको लक्ष्य कर लिखी गई है ? कवयित्री न उसकी क्या-क्या विशेषताएँ बताई हैं ?
२. **'मधुर मधुर मेरे दीपक जल'** शीर्षक कविता में दीपक किसका प्रतीक है ? उसके द्वारा क्या भाव प्रकट किया गया है ?
३. **'जाग बेसुध जाग'** में किन महापुरुषों का नामोल्लेख हुआ है ? कविता का संदेश अपने शब्दों में लिखिए ।
४. **'महादेवी के गीत करुणा से भीगे हैं'** ।—उदाहरण देकर इस कथन की पुष्टि कीजिए ।
५. नीचे दिए अप्रस्तुतों के प्रस्तुत बताइए :
अंचल, मृदु अंजन, स्वर्ण-फूल, ताज तथा **बसंत** ।
६. निम्नांकित अवतरणों के भावार्थ स्पष्ट कीजिए :
(क) **हँस उठते······सर्वस्व वार** ।
(ख) **नभ गंगा······विविध लास** ।
(ग) **सीमा ही······दीपक जल** ।

टिप्पणियाँ

सूरदास

ससि थक्यौ	—चंद्रमा का वाहन मृग मुरली सुनकर स्तंभित हो गया। इससे चंद्रमा की गति रुक गई और रात का बीतना बंद हो गया।
हारिल	—एक पक्षी जिसके संबंध में प्रसिद्ध है कि वह पृथ्वी पर नहीं उतरता और यदि उतरता है तो अपने पंजे में एक लकड़ी पकड़े रहता है।
दधिसुत	—उदधिसुत, चंद्रमा।
करवत	—करपत्र, आरा; कहा जाता है कि पहले मुक्ति की इच्छा से लोग काशी में जाकर आरे से अपने शरीर को चिरवा डालते थे। इसे 'काशी करवत लेना' कहा जाता था।

मीराबाई

त्रिबिध ज्वाला	—तीनों प्रकार के दु:ख—आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक (दैहिक, दैविक, भौतिक)
नख सिखाँ	—सर्वांग में, नख से शिखा तक।
बैजंतीमाल	—बैजयंती नाम की माला जिसे भगवान विष्णु धारण करते हैं।
नरहरि	—नृसिंह
ऊभी	—खड़ी हुई।
चहर की बाजी	—चौपड़ की बाजी के समान अचिर, समाप्त हो जाने वाली बात अथवा आनंदोत्सव, क्षणिक धूमधाम।

जायसी

दहुँ	—धौं (ब्रजभाषा-रूप), न जाने।
खोंपा	—बालों का जूड़ा

ससि के सरन लीन्ह जनु राहाँ—मानो राहु (काले केश) ने चंद्रमा (मुख) की शरण ली हो।

मकु —कदाचित्

बाद मेलि —बाजी लगाकर।

केशवदास

जीव —बृहस्पति (विद्या के प्रतीक, देवताओं के गुरु)

त्रिकूट —वह पर्वत जिस पर लंका वसी है।

अक्षकुमार —रावण का पुत्र।

भृगुनंदन —महर्षि भृगु के पुत्र परशुराम।

छिति-छत्र —पृथ्वी भर के सभी छत्रिय।

बान —बाणासुर।

बपमारे —(अंगद के) पिता को मारनेवाले अर्थात् राम।

सका —सक्का, भिश्ती, पानी भरनेवाला।

सिखी —अग्नि।

महादंडधारी —यमराज।

सीस चढ़ाए आपने —शिव को प्रसन्न करने के लिए रावण ने अपने शीश काट-काट कर चढ़ाए थे। शिवजी के आशीर्वाद से उसके सिर बार-बार निकल आते थे।

भागर का खेल —जादू का खेल।

अक्षरिपु —हनुमान

लाइ गयो —आग लगा गया।

प्रस्थान —वह वस्तु जो शुभ मुहूर्त में यात्रा के दोष के निवारणार्थ अन्य स्थान पर रख दी जाती है।

बिहारीलाल

हरित —हरा, प्रसन्न, दूर।

बाज पराएँ पानि —पहले लोग शिकार के लिए बाज को पालते थे जो पक्षी को मारकर अपने स्वामी के पास ले आता था। इससे न सुकृत की सिद्धि होती थी और न स्वार्थ की। यह अन्योक्ति जयसिंह के प्रति

है जो औरंगज़ेब से मिलकर स्वजनों को मार रहा था।

वृषादित —वृष राशि का सूर्य, जो प्रचंड होता है।

पगारु —पैदल चलकर पार उतरने योग्य नदी, तालाब आदि।

दान —गज-मद।

मधु-नीरु —मकरंद।

करतु झाँझि —अड़ियलपन करते हुए।

झकुरातु —झूमते हुए (यहाँ घोड़े के पक्ष में इसका अर्थ होगा आगे के दोनों पाँव उठाते और पटकते हुए)

सबी —शबीह (फ़ारसी), चित्र

घरी —समय बतानेवाले जलयंत्र की कटोरी, जो बार-बार भरती और खाली होती रहती है।

भूषण

चतुरंग-सैन —रथ, हाथी, घोड़े एवं पैदल इन चार अंगों से युक्त सेना।

एल —समूह (यहाँ पर सेना से अभिप्राय है)

कमान —तोप।

कोकबान —कुहुकबाण, एक प्रकार का बाण जिसे चलाते समय विशेष शब्द निकलता है।

इंद्र को अनुज —विष्णु।

दुग्ध-नदीस —क्षीरसागर।

बखत बलंद —सौभाग्यशाली।

मालमकरंद कुलचंद —मालमकरंद (शिवाजी के पूर्वज का नाम); उनके कुल के चंद्रमा शिवाजी।

कनकलता······ बुंद मकरंद के —कनकलता=शरीरयष्टि, इंदु=चंद्र (मुख), अरविन्द=कमल (आँख), मकरंद=पुष्पराग (अश्रु)। शिवाजी के प्रताप से भयभीत शत्रु की स्त्रियों के नेत्रों से अश्रु गिरते रहते हैं।

बै संगिनी —वय:संगिनी, आयु भर साथ देनेवाली।

परछीने —पर-क्षीण, परकटे।

पर —शत्रु।

भारतेन्दु हरिश्चंद्र

सेवालन —शैवाल, सिवार, घास ।
गोभा —अंकुर ।
जुग पच्छ —कृष्ण एवं शुक्ल पक्ष ।
परिकर —फेंटा ।

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

लवर —लौ, लपट ।
अतसि-पुष्प —अलसी का फूल ।
क्षणदा-कर —चंद्रमा ।

जगन्नाथदास 'रत्नाकर'

सव्यसाची —बाएँ हाथ से भी समान वेग से बाण चलाने में समर्थ अर्थात् अर्जुन ।
धनंजय —अनेक राज्यों को जीतकर उनसे धन प्राप्त करने के कारण अर्जुन को धनंजय कहा गया है ।

माखनलाल चतुर्वेदी

शूच्यग्र —सूई की नोक का अगला भाग ।

जयशंकर प्रसाद

निर्मोक —केंचुली ।
बिहाग —सोने के समय का एक राग ।
वरुण-पथ —समुद्री मार्ग ।
एक निर्वासित —राम ।
भिक्षु होकर रहते सम्राट —अशोक ।

सियारामशरण गुप्त

विदेह —देहधारी होने पर भी देह की चेतना से मुक्त ।
अंतराय —विघ्न, बाधा ।
कालकूट —एक प्रकार का विष जो तत्काल मारक होता है ।

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

प्रणव	—पवित्र शब्द 'ओम्' ।
सैन्धव-तुरंग	—सिन्धु देश का घोड़ा ।
जड़वाद	—मिथ्यावाद ।

सुमित्रानंदन पंत

कामरूप	—इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले ।
बालहंस	—प्रातःकालीन सूर्य ।
अराल	—वक्र, टेढ़ी ।
प्रतनुभार	—तन्वंगी, कम भारवाली, हल्की ।

महादेवी वर्मा

बतास	—वायु ।

अंतःकथाएँ

बलि

यह दैत्यराज विरोचन का पुत्र और प्रह्लाद का पौत्र था। अपनी दानशीलता के लिए यह बड़ा प्रसिद्ध था। इसके अहंकार को नष्ट करने के लिए भगवान विष्णु ने वामन अवतार लेकर इससे तीन पग भूमि माँगी। बलि के दान करने पर वामन ने विराट रूप धारण कर सारी पृथ्वी दो डग में ही नाप ली। यह देख बलि ने तीसरे पग के लिए अपना शरीर अर्पित कर दिया। इससे विष्णु भगवान बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने बलि को पाताल का राजा बना दिया।

नृसिंह

दानवराज हिरण्यकशिपु प्रह्लाद का पिता था। हिरण्यकशिपु ने ब्रह्मा से यह वर प्राप्त कर लिया था कि उसे न तो कोई देवता मार सके, न मनुष्य, न पशु, न ही वह किसी हथियार से मारा जाए और न ज़मीन या आकाश में। इसलिए देवताओं की प्रार्थना पर भगवान विष्णु ने नृसिंह (आधा सिंह और आधा मनुष्य) रूप धारण कर और उसे अपनी जंघा पर रखकर पंजों से उसका वध किया।

गज

भगवान का भक्त एक गंधर्व शाप-भ्रष्ट होकर गज-रूप में पैदा हुआ था। एक बार वह सरोवर में जल-क्रीड़ा कर रहा था। सरोवर में रहनेवाले ग्राह ने उसका पैर पकड़ लिया और खींचकर ले जाने लगा। दोनों में युद्ध होता रहा। अंत में गज ने भगवान से रक्षा के लिए प्रार्थना की। भगवान इतने द्रवित हुए कि बिना वाहन के ही दौड़े हुए आए और ग्राह का वध करके गज की रक्षा की।

बालि द्वारा रावण को काँख में दबाना

बालि पंपापुर का राजा था। उसे यह वरदान प्राप्त था कि जो भी उससे लड़ने आएगा उसका आधा बल उसे मिल जाएगा। एक बार रावण ने आकर उसे ललकारा। बालि उस समय सरोवर पर पूजा कर रहा था। जब रावण बहुत उछल-कूद करने लगा तब बालि ने उसे अपनी काँख में दबा लिया और पूजा

करता रहा। बहुत गिड़गिड़ाने पर उसने रावण को छोड़ दिया और बाद में दोनों में मित्रता हो गई।

हैहयराज

हैहय देश का राजा सहस्रार्जुन। जब रावण अपनी दिग्विजय में हैहय देश पहुँचा तो वहाँ के लड़कों ने उसे पकड़कर घुड़साल में बाँध दिया। सहस्रार्जुन कहीं बाहर गया था। लौटने पर उसने दया करके रावण को छोड़ दिया। रावण लज्जित होकर चला आया।

सगरसुत

सगर अयोध्या के प्रतापी सूर्यवंशी राजा थे। इनके ६० हज़ार पुत्र थे। एक बार सगर ने अश्वमेध यज्ञ के लिए घोड़ा छोड़ा। इंद्र ने उसे चोरी से कपिल मुनि के आश्रम में बाँध दिया। सगर के साठ हज़ार पुत्र घोड़े को खोजते हुए कपिल मुनि के आश्रम में पहुँचे और उन्होंने कपिल मुनि को अपशब्द कहे जिससे रुष्ट होकर मुनि ने उन्हें शाप से जला दिया। सगर के ही वंशज भगीरथ ने घोर तपस्या के उपरांत यह वर प्राप्त किया कि गंगाजल से उनके पूर्वजों का उद्धार होगा, अतः वे स्वर्ग से गंगा लाए और अपने पूर्वजों का उद्धार किया।

दधीचि

ये शुक्राचार्य के पुत्र थे। उस समय वृत्रासुर नामक राक्षस देवताओं को बहुत तंग कर रहा था। देवताओं को ज्ञात हुआ कि केवल दधीचि की हड्डी के वज्र से ही वृत्रासुर मारा जा सकता है। वे दधीचि के पास पहुँचे। दधीचि ने देवताओं के उपकार के लिए अपना शरीर त्याग दिया। फिर उनकी अस्थि से देवताओं ने वज्र बनाया और वृत्रासुर का वध किया।

जैमिनी, पतंजलि और व्यास

ये तीनों मुनि थे। जैमिनि **पूर्वमीमांसा दर्शन** के प्रवर्तक थे। पतंजलि **योग दर्शन** के आचार्य और पाणिनि सूत्रों के **महाभाष्यकार** माने जाते हैं। व्यास **वेदांत-सूत्र, महाभारत** और **अठारह पुराणों** के रचयिता कहे जाते हैं।